समर्पण

प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय मुनिवर

पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी, M. A.

के

सुयोग्य पुत्र श्रीयुत सदानन्दजी एम. ए. सी.

प्रोफैसर गवर्नमेन्ट कालिज मुलतान

के

चरण कमलों में

आ ——

रहते हुए भी योगियों जैसा

जीवन व्यतीत कर रहे हैं,

जिनके पवित्र आध्यात्मिक जीवन से

मुझे असीम प्रेरणा

प्राप्त हुई है।

विनीत—

गोपाल

प्रा
क्
थ
न

प्रिय पाठकवृन्द;

न तो मैं योगी हूँ और न ही मैं कोई पण्डित हूँ। प्रश्न हो सकता है कि मैंने इस कठिन विषय पर लिखने का साहस क्यों किया? उसके दो मुख्य कारण हैं—

प्रथम कारण तो यह है कि मैंने कई स्थानों पर योगदर्शन पर कथा के रूप में अथवा व्याख्यान के रूप में भाषण किये हैं। बहुतसे भाईयों का आग्रह था कि मैं जो कुछ बोलता हूँ उसे लेखबद्ध करदूँ। उनके बार बार आग्रह करने पर मैं मजबूर हो गया और इस पुस्तक के रूप में उन विचारों को प्रकट कर देना पड़ा।

दूसरा कारण यह था कि जो इस समय तक योगदर्शन पर भाष्य हो चुके हैं—वह वस्तुतः बड़े उत्तम होते हुए भी साधारण जनता तथा आधुनिक शिक्षितवर्ग के लिये मुझे सरल प्रतीत नहीं हुए। मेरी चिरकाल से यह इच्छा थी कि अपने दर्शनों उपनिषदों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों को इतने सरल और आधुनिक तरीके पर अपनी भाषा में लिखा जाये जिससे बच्चे, बूढ़े, नौजवान सभी लाभ उठा सकें। मैं नहीं जानता कि इस पुस्तक से मेरा प्रयोजन हल होगा या नहीं परन्तु मेरी तरफ से ऐसा प्रयत्न ईमानदारी से किया गया है। पाठकवृन्द उसी दृष्टि से इस पुस्तक का अध्ययन करें जिस दृष्टि से इसे लिखा गया है। मैंने इस पुस्तक को लिखते समय निम्न पुस्तकों का आश्रय लिया है जिसके लिये मैं लेखक महोदयों का कृतज्ञ हूँ।

१. योगदर्शन=व्यास भाष्य
२. योगदर्शन = Harvard University.
३. योगदर्शन = Panini office by Mr. Ram Prasad M. A.

४. योगदर्शन=पं० राजारामजी शास्त्री

५. राजयोग=Swami Vivekanandji

६. योगरहस्य=महात्मा नारायण स्वामीजी

७. How to live=Life-Extension Institute America

८. Food=Mccorason.

अन्त में मैं श्री आचार्य पं० देवशर्म्मा जी गुरुकुल काङ्गड़ी तथा श्री प्रो० सुधाकरजी M. A. का हार्दिक कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे इस पुस्तक को लाभदायक बनाने में अमूल्य निर्देश किये तथा प्रोत्साहन दिया। अपने भाई पं० कृष्णरावजी विद्यालङ्कार तथा पं० देशराजजी का धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने प्रेस के लिये कापी तय्यार करने में मेरी सहायता की।

लेखक

भू
मि
का

योग एक वैज्ञानिक कला है

'योग एक वैज्ञानिक कला है जिसका ध्येय आत्मा की शक्तियों को विकसित करना है। प्रत्येक विज्ञान का यथार्थ ज्ञान तभी प्राप्त होता है, जब उसकी प्रयोगशाला (laboratory) का यथोचित उपयोग लिया जावे। जब उस विज्ञान के अनुकूल द्रव्य और यन्त्र वहां उपस्थित हों। उनके संश्लेषण अथवा विश्लेषण के तरीके से हम परिचित हों, और अपनी सारी शक्तियों को उस विषय में केन्द्रित कर सकें। यदि मैं नक्षत्रविद्या का अध्ययन करना चाहता हूँ तो मुझे दूरबीन का प्रयोग करना आवश्यक है। तारों और ग्रहों का ज्ञान प्राप्त किए बिना मैं उस विद्या में शून्य हूँ।

Observatory (निरीक्षण शाला) में जाकर अपनी सारी शक्तियों को जब तक मैं उस विद्या के उपार्जन में नहीं लगा देता, तब तक वह विज्ञान मुझे प्राप्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार योग भी एक विज्ञान है, इसकी प्रयोगशाला हमारा अपना शरीर है, इस प्रयोग शाला में अन्तःकरण चतुष्टय (मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त) इस विद्या के जानने के लिये यन्त्र हैं। वैराग्य और एकाग्रता उन यन्त्रों के प्रयोग में साधन हैं। जब तक मैं इस विज्ञान की प्रयोगशाला को सुव्यवस्थित नहीं रखता और इसके यन्त्रों का पूरा २ उपयोग नहीं लेता तब तक मैं इस विद्या को प्राप्त नहीं कर सकता। प्रत्येक विज्ञान के अन्वेपण करने के तरीके भिन्न २ हैं। इस विद्या के अन्वेषण का तरीका विलक्षण है, इसमें अपना मन ही यन्त्र है, और अपना शरीर ही प्रयोगशाला है। अब देखना यह है कि योग का सिद्धान्त क्या है, जिसका हमने अन्वेषण करना है।

योग का सिद्धान्त

पतञ्जलि मुनि के योग का सिद्धान्त यह है कि आत्मा स्वभाव के पवित्र और शुद्ध है इसमें लेशमात्र भी पाप नहीं। मन और बुद्धि के संसर्ग में जब आत्मा आता है, तो अल्पज्ञ होने के कारण वह उनमें लिप्त हो जाता है। और अविद्या के कारण अपने स्वरूप को भूल कर उनके स्वरूप को अपना स्वरूप समझने लगता है। उसका परिणाम राग और द्वेष, सुख और दुःख है। मन और बुद्धि प्रकृतिक वस्तुएं हैं, और जड़ हैं। आत्मा की क्रिया से वह क्रियावान् हो रहे हैं। आत्मा के प्रकाश से वह प्रकाशित हो रहे हैं। जैसे चुम्बक के पास लोहा रखा जावे तो उसमें क्रिया उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार मन और बुद्धि में आत्मा के संसर्ग से क्रिया अथवा प्रकाश दिखाई दे रहा है। आत्मा अविद्यावश उनकी क्रिया को अपनी क्रिया समझ रहा है। जैसे बुखार तो मेरे लड़के को है, परन्तु रोना मुझे आ रहा

है। जैसे वह अध्यक्ष अयोग्य समझा जावेगा जो अपने माहतहतों से कार्य न ले सके, प्रत्युत उनके कार्यों को स्वयं करने लग पड़े। ठीक इसी प्रकार हमारी आत्मा की अवस्था हो रही है, उसे मन बुद्धि आदि का पूरा उपयोग लेना था और उनके अध्यक्ष होने की हैसियत से इनके साथ व्यवहार करना था। वह अज्ञान वश इनमें इतना मुग्ध हो चुका है, कि इनके धर्मों को अपना ही धर्म समझने लगा है, यही अज्ञान है। इसी अज्ञान को दूर करना योग का ध्येय है। जब यह अज्ञान दूर हो जावेगा तब उसको अपने स्वरूप का ज्ञान हो जावेगा। और अपने आप को शक्तिशाली, द्रष्टा और इन सब यन्त्रों का मालिक अनुभव करने लगेगा। दूसरे शब्दों में आत्मा का साक्षात्कार करना ही योग का उद्देश्य है। स्वामी विवेकानन्द जी ने यथार्थ लिखा है —

"If there is a God we must see him, if there is a soul we must feel it, other-

wise it is better not to believe it. It is better to be an athiest than to be a hypocrite.

यदि हमें आत्मा में विश्वास है, तो हमें उसका अनुभव होना चाहिए, अन्यथा उसमें विश्वास नहीं करना चाहिए। मक्कार होने की अपेक्षा नास्तिक होना उत्तम है। इसी सचाई को जाहिर करने के लिए ही योग दर्शन का उद्भव हुआ है, जिससे हम अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर सकें।

एक गलत फ़हमी

एक गलत फ़हमी यह फैली हुई है कि इस विद्या के जानने का अधिकार केवल संन्यासी, महात्मा, साधु और सन्तों को है जो संसार से विरक्त होकर गुफाओं में निवास करते हैं। यह अशुद्ध भावना है। इस विद्या को सीखने का अधिकार बिना मजहब या मिल्लत के सबको है। ऋषि मुनि जो पुराने ज़माने में हुए, और जो इस विद्या का प्रचार करते थे उनमें प्रायः बहुतसे

गृहस्थी थे। क्या राजा जनक ब्रह्मविद्या में प्रवीण न था? महर्षि व्यास ने अपने लड़के शुक को उन्हीं से ब्रह्मविद्या सीखने के लिए भेजा था। वह राज्य कार्य भी करते थे और ब्रह्मज्ञानी भी थे। उद्दालक जैसे ऋषि कई वेदवेत्ताओं को साथ लेकर ब्रह्मविद्या में शङ्काओं को निवारण करने के लिए राजा अश्वपति के पास गए थे। श्वेतकेतु को ब्रह्म-विद्या का उपदेश अपने पिता से प्राप्त हुआ। राजा शौनिक ने ब्रह्मविद्या अङ्गिरा ऋषि से प्राप्त की थी। यदि हम उपनिषदों को ध्यान पूर्वक पढ़ें और अपने शास्त्र देखें तो हमें मालूम हो जावेगा कि इस विद्या में गृहस्थी भी वैसे ही प्रवीण हुए हैं, जैसे संन्यासी महात्मा। अतः यह ख्याल करना कि केवल विरक्त सन्यासी ही इस विद्या को जानने के अधिकारी हैं यह भ्रम है। जिस व्यक्ति के दिल में जिज्ञासा है, और इस विद्या के जानने की उत्कट इच्छा है, जिसके हृदय में श्रद्धा और विश्वास है, वह चाहे गृहस्थी हो या

सन्यासी, मुसल्मान हो या हिन्दू, उसे इस विद्या के सीखने का अधिकार है। इस विद्या का लोप इसलिए हुआ है कि यह विद्या कुछ लोगों के हाथ में आ गई और उन्होंने इसे इतना गुप्त रखा कि इसका प्रचार सर्वथा रुक गया। अन्यथा जितना इस विद्या का अधिक प्रचार होता, उतना ही भारतवर्ष का नाम उज्वल होता। ऋषि दयानन्द ने ठीक निर्देश किया है, जिसका सारांश यह है।

"जब बच्चा वर्णमाला पढ़ना आरम्भ करे उसे अक्षर विद्या के साथ २ प्राण विद्या का ज्ञान भी दिया जाना चाहिए"। इस लिए इस विद्या का सीखना सबके लिए आवश्यक समझा जाना चाहिए।

योग में प्रविष्ट होने के लिए कुछ प्रारम्भिक निर्देश।

(१) स्वस्थ तथा शुद्ध शरीर।

(२) शुद्ध और सात्विक भोजन।

(३) बुद्धि पूर्वक श्रद्धा, विश्वास, उत्साह और शुद्ध विचार।

(४) आसनों की सिद्धि।

(५) प्राणायाम।

कई लोग प्राणायाम और आसनों को ही योग समझते हैं। यह योग के वहिरङ्ग साधन हैं इनसे केवल शरीर की शुद्धि होती है। और मानसिक व्यथा कुछ कम होती है। इनके सिद्ध होने पर ही योग आरम्भ होता है। इन पांचों निर्देशों का यत् किंचित् संक्षेप से वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

(१) शुद्ध और स्वस्थ शरीर—

हमारे शरीर में हर समय थोड़े बहुत विष पैदा होते रहते हैं। इन विषों के कारण ही मनुष्य की मृत्यु होती है। इन विषों को खारिज करने के लिए परमात्मा ने हमारे शरीर में जिगर और गुर्दों का प्रवेश किया है। परन्तु बावजूद सारे प्रयत्नों के भी विषों का सर्वथा निकास नहीं हो सकता। इसलिए डाक्टर फिशर लिखते हैं।

"The chief organs for such elimination are the kidneys and water is the chief agent of elimination. No rule of hygiene is easier to obey than adequate water drinking and yet some suffer by failure so follow it. A good rule is to drink six glasses of water daily, one on arising, one in the forenoon, one in the after noon and one at each meal."

स्वास्थ्य को ठीक रखने का सब से आसान तरीका यह है कि मनुष्य दिन में ६ गिलास पानी पीवे। एक प्रातःकाल उठते ही, दूसरा दोपहर से पहले, तीसरा दोपहर के पश्चात और शेष भोजन के साथ।

हठयोग में भी विष निकालने के कई तरीके दिये हैं। उनमें मुख्य निम्न हैं—

(१) नेति—एक बड़ी बारीक कपड़े की रस्सी बनानी, उसे नासिका से गुजार कर मुँह के रास्ते

से निकालना, जुकाम में यह लाभदायक है।

(२) धौति—८ अङ्गुल चौड़े और १० या १५ हाथ लम्बे सफेद मलमल के टुकड़े को गरम पानी से अपने पेट में ले जाना। दो चार मिनिट वहां रखकर पुनः धीरे धीरे उसे बाहर निकालना। इससे अन्दर का कफ, पित्त सब सुव्यवस्थित हो जाता है।

(३) वस्ती—एनीमा को कहते हैं। यह अधिक गरम पानी से न किया जावे, कब्ज की शिकायत दूर हो जाती है।

(४) शङ्ख प्रक्षालन—दो या तीन सेर मामूली गरम पानी पीना और कुछ देर अपने अन्दर रख कर फिर वमन कर देना।

इन तरीकों से भी विषों को खारिज किया जा सकता है। परन्तु प्रत्येक पुरुष इन्हें करने में असमर्थ है। और यदि ठीक प्रकार से न किए जावें तो यह हानिकारक भी सिद्ध हुवे हैं। इस-लिए जहां तक हो सके स्वाभाविक तरीकों का ही

प्रयोग किया जावे। स्वाभाविक तरीके यही हैं कि मनुष्य पानी का अधिक प्रयोग करे। शुद्ध और सात्विक भोजन करे। कुछ आसनों का व्यायाम करे। शुद्ध और पवित्र विचार रखे। और प्राणायाम करे।

—शुद्ध और सात्विक भोजन—

दूध और फल तो सात्विक भोजन समझा ही जाता है। इसलिए उसपर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। केवल एक प्रसिद्ध डाक्टर का वाक्य इसे अधिक स्पष्ट कर देगा—

"Milk contains all the vitamins; minerals as calcium and potassium; and building material of the purest kind and fat and is the most important complete food."

दूध में सब विटामीन मौजूद हैं। शरीर के बढ़ाने में यह बहुत सहायक है। कैलशियम और पोटाशियम भी इसमें मौजूद हैं। सर्वतोपरि यह

पूर्ण भोजन है। सिर्फ अब हमने यह देखना है, कि साधारणतया जो हम भोजन करते हैं, उसे किस प्रकार हम सात्विक और शुद्ध बना सकते हैं।

भोजन को शुद्ध और सात्विक बनाने के लिए इस बात का खयाल रहे कि वह किसी Vitamine (विटामीन) से वंचित न हो जावे। और Carbo-hydrate (कारबोदित) fat (चरबी) और प्रोटीन उचित मात्रा उसमें रहे। विटामीन क्या है यह किसी को मालूम नहीं, परन्तु यह सिद्ध किया गया है, कि भोजन में यदि अमुक चीज़ का अभाव हो जावे तो उसका प्रभाव अमुक-अमुक होगा। यथा भोजन में Vitamine A. (विटामीन ए) के अभाव से आंखों को बीमारी हो जाती है जिस का नाम (Xerophtha lima eye desease) है, और अन्त में जिससे मनुष्य अन्धा हो जाता है। इस अभाव को दूर करने का उपाय नारङ्गी, केला, नाशपाती, टमाटर, मक्खन, पनीर और दूध का सेवन है।

Vitamine B. (विटामीन बी) के अभाव से अजीर्ण और भूख का कम लगना तथा अन्य बात की बीमारी की सम्भावना रहती है। शरीर में थकावट शीघ्र आ जाती है। दरजा हरारत नार्मल से कम रहता है। इसे दूर करने के लिए आलू, शलग़म, बन्द गोभी, गाजर, सेब, नीबू आड़ू, टमाटर और मूली का सेवन आवश्यक है।

Vitamine C. (विटामीन सी के अभाव से दांतों के रोग अधिक होते हैं। और वह जल्दी झड़ने लगते हैं, आदमी सारा दिन ऊंघता रहता है, और थकावट महसूस करता है। इसे दूर करने के लिए कच्चे ताजा फल और सलाद के पत्ते बहुत लाभदायक हैं।

Vitamine D. (विटामीन डी) के अभाव से शरीर की हड्डी कमज़ोर हो जाती है इसे दूर करने के लिए दूध और मक्खन का सेवन आवश्यक है।

Vitamine E. (विटामीन ई) के अभाव

से जननेन्द्रिय पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसे दूर करने के लिए दाल, मटर, लोबिया और फलों में तरबूज़ का सेवन आवश्यक है।

इसके बाद हमको यह देखना है कि हमारे भोजन में कारबोहाईड्रेट (Corbohydrate) (कारबोदित) चरबी और प्रोटीन उचित मात्रा में है या नहीं। नूतन वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि यदि एक मनुष्य १०० क्लोरी (उष्णता की मात्रा) भोजन करता है तो उस १०० क्लोरी में से साठ प्रतिशतक कारबोहाईड्रेट होना चाहिए, ३० प्रतिशतक fat (चरबी) होनी चाहिए और दस प्रतिशतक प्रोटीन होनी चाहिए। Corbohydrate (कारबोदित) निम्न वस्तुओं में है—

(१) शकर और खाँड (२) सब दालें और अनाज (३) सूखा फल और अखरोट (४) आलू (५) पत्तेदार सब्जियां और (६) ताज़ा फल।

(२) Fat (चरबी) निम्न वस्तुओं में है—

मक्खन, पनीर, दूध, घी, तेल मलाई।

(३) उपयुक्त Plotien (प्रोटीन) निम्न वस्तुओं में है—दूध, दही, मट्ठा, लस्सी, पनीर, पालक, तरबूज, सलाद के पत्ते, मटर दालें और चने। दही में Lactri Acid Bacteria रहता है और वह शरीर के विकारों को दूर करने की सामर्थ्य रखता है। इसी लिए वैज्ञानिकों ने दही, लस्सी, अधरिड़का और मट्ठा के उपयोग करने की बड़ी आवश्यकता अनुभव की है। इसके अतिरिक्त Mineral Salts (खनिज लवण) हैं जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। वह निम्न हैं—

Calcium (चूना), Potassium (पोटाश), Sodium (सोडियम), Iron (लोहा), Magnesium (मगनेशियम), Zinc (जस्त), Copper (ताँबा), Phosphorus (फासफोरस); Sulphur (गन्धक), Chlorine (क्लोरीन) Iodine (आयोडीन) etc. etc.

Mccorison साहिब अपनी पुस्तक Food नामक में लिखते हैं—

"When the food is of the right kind, all awenty mineral elements are presents in it and in the right proportion but no single food stuff with the exception of milk contains then all in just the right proportion."

जब भोजन उचित प्रकार का हो उसमें उपरोक्त सब Mineral Salts विद्यमान हैं। और ठीक अनुपात में विद्यमान हैं। सिवाय दूध के और कोई भोजन नहीं जिसमें वह सब मौजूद हों। अत: सात्विक और शुद्ध भोजन के लिए उपरोक्त सब बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

"जैसा अन्न वैसा मन" "आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि" "दध्नः यथा मथ्यमानस्य सर्पिः समुदिपति एवं वा अरे अन्नस्य प्राश्यमानस्य मनो समुदिशति"

भोजन शुद्ध होगा, मन शुद्ध होगा। आहार शुद्ध होगा, बुद्धि शुद्ध होगी। जैसे दही के मथने से

मक्खन निकलता है इसी प्रकार भोजन जैसा खाया जाता है वैसा मन बनता है। भगवान् कृष्ण ने गीता के एक श्लोक में सागर को गागर में बन्द कर दिया है—

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥"

आहारादि युक्त हों, कर्मों में चेष्टा युक्त हो, जागना और सोना युक्त हो, तब योग सब दुःखों के हरने वाला हो जाता है।

(३) श्रद्धा, विश्वास और शुद्ध विचार—

इसपर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं—

'श्रद्धामयोऽयं पुरुषः" (गीता)

पुरुष स्वभाव से ही श्रद्धामय है।

"श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्" (गीता)

श्रद्धावान् ही ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। जब श्वेतकेतु को पिता का उपदेश समझ न पड़ा तो पिता ने आदेश दिया "श्रद्धत्स्व" श्रद्धा रख। सत्यकाम अपने गुरु हरिद्रुमत के आदेश को

श्रद्धापूर्वक पालन करने के लिए जङ्गल में गायें चराता रहा, और जब तक वह दुगनी न हो गई तब तक वह वापस नहीं लौटा। उसी श्रद्धा से ही उसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया।

प्रजापति के पास देवता, मनुष्य तथा असुर ब्रह्मविद्या का उपदेश लेने के लिए गए—तीनों समुदायों के प्रतिनिधियों से केवल एक अक्षर "द" बोला उन्होंने उस अक्षर को श्रद्धापूर्वक ग्रहण किया। और अपने अपने विचारों के अनुसार उन्होंने उस "द" का अर्थ निकाला और सबका कल्याण हो गया। दुनियां में ६६ प्रतिशत कार्य श्रद्धा और विश्वास पर आश्रित है। अनुमान प्रमाण श्रद्धान्वित है। आज सूर्य निकला है कल भी इसी तरह निकलेगा। यह अनुमान भी श्रद्धा पर आश्रित है। चीन और जापान के युद्ध की खबरें ज्यों की त्यों जैसी निकलती हैं उनपर विश्वास होता जा रहा है। क्यों? इसलिए कि मनुष्य के अन्दर विश्वास करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

एक दरिया को पार करना है मल्लाह से पूछते हैं कि पानी कितना है ? वह जवाब देता है कि घुटनों तक है। हम कपड़ों की गठरी सिर पर रख कर नदी में चल देते हैं। क्योंकि हमें विश्वास है कि मल्लाह नदी के किनारे रहता है इसलिए इस विषय में वह आप्त पुरुष है।

योग में श्रद्धा एक आवश्यक अंग है। इसी लिएं पतञ्जलि मुनि ने लिखा है "श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्वक इतरेषाम्" योग के लिए श्रद्धा, उत्साह, बुद्धि, ध्यानावस्थित होना, प्रज्ञा की प्राप्ति आवश्यक अङ्ग हैं। हमारी मानसिक अवस्थाओं का भी हमारे शरीर पर बहुत प्रभाव पड़ता है। डाक्टर Laymam के वाक्य मेरे आशय को सुस्पष्ट करेंगे।

"Shame fills our cheeks with blood. Fear drives the blood away. Excitement quickens the heart-heat. Grief brings fears, the re-action of glands about

the eyes. Sighs cause disturbances of regular breathing. A great shock to the mind may cause fainting and worry will interfere with digestion and sleep."

शरम का भाव जब हमारे मन में पैदा होता है तो हमारे गाल खून से लाल हो जाते हैं। डरावनी चीज़ को देख कर हमारा मुंह पीला पड़ जाता है। गुस्से से हृदय की गति तेज़ हो जाती है। ग़म से आंखों पर असर पड़ता है। आह भरने से सांस की गति अनियमित हो जाती है। मानसिक व्यथा से मनुष्य बेहोश हो जाते हैं। चिन्ताओं से हाज़मा ख़राब हो जाता है। और नींद में कमी हो जाती है। इसी प्रकार अस्वस्थ शरीर के कारण से भी मानसिक व्यथा बढ़ती है। मन और शरीर का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन दोनों का स्वस्थ होना आवश्यक है।

नचिकेता ने जब यमराज से योगविद्या की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की तब यही उत्तर मिला—

"नाविरतो दुश्चरितात नाशान्तो नासमाहितः"
अशान्त, मनोविकारों से युक्त दुश्चरित्र और
अज्ञानी योग को प्राप्त नहीं कर सकता।

आसन

आसन दो प्रकार के हैं। कुछ आसन तो ऐसे हैं जो केवल शारीरिक व्यायाम के लिए हैं। और कुछ आसन ऐसे हैं जो अभ्यास के लिए आवश्यक हैं। योगासन पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पाठकगण उनका वहीं से अध्ययन करें और उनके अनुसार अमल करें। यहां केवल इतना ही बता देना पर्याप्त है कि आसनों के व्यायाम से केवल शरीर का व्यायाम नहीं होता, प्रत्युत नस और नाड़ी का भी व्यायाम हो जाता है। उसका फल यह है कि शरीर के विष खारिज होते हैं। शरीर स्वच्छ और पवित्र होता है।

Mr. Iriwing के यह वचन ध्यान देने के योग्य हैं।

"One of the simplest and most

effective methods of avoiding self-poisoning is by maintaining an erect posture. In an erect posture the abdominal muscles tend to remain tent and to afford proper support or pressure to the abdomen including the great Splanchnic circulation of large blood vessels."

इसी ही भाव को श्वेताश्वतर उपनिषद् में पढ़िए।

"त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरम्"

छाती, गर्दन, और सिर इन तीनों को सीधा रख कर.........योग में प्रवृत्त हो।

जो आसन अभ्यास के लिए आवश्यक हैं उनमें सिद्धासन और पद्मासन सबसे अधिक उपयोगी हैं। आसन सिद्ध तभी होता है, जब मनुष्य लगातार एक ही आसन पर स्थिरता पूर्वक और सुख पूर्वक बैठ सके। जिस प्रकार Hypnotism के समय शरीर बिल्कुल ढीला हो जाता है और

अङ्गों में कठोरता नहीं रहती इसी प्रकार आसन जब सिद्ध होता है, तो शरीर बिल्कुल हलका और नरम हो जाता है। उस अवस्था में जब अभ्यास किया जाता है वह अभ्यास सफल होता है। गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं—

"समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं शिरः"

अपनी गर्दन सिर और शरीर को एक सीध में रखता हुआ योग का अभ्यास करे। और बिछाने के लिए भगवान् कृष्ण का आदेश है—

"चैलाजिनकुशोत्तरम्"

नीचे कुशा, उसके ऊपर काले हिरण की छाल, और उसके ऊपर श्वेत कपड़ा।

प्राणायाम

प्राणायाम ६ प्रकार के होते हैं—

(१) अनुलोम, (२) विलोम, (३) सूर्यभेदी, (४) उज्जायी, (५) शीतली, (६) भस्त्रा, (७) भ्रामरी (८) मूर्छा, (९) साविनी।

इन सब में भस्त्रा प्राणायाम सरल और अधिक

लाभदायक है। भस्त्रा प्राणायाम में बड़े गहरे तथा धीरे धीरे सांस अन्दर लेते हैं और धीरे धीरे उन्हें बाहर निकालते हैं। उन्हें अन्दर रोकने की आवश्यकता नहीं। अंग्रेज़ी में इसे Deep breathing कहते हैं यदि दिन में कम से कम दो बार सूर्योदय से पहले शौच से निवृत होकर और सूर्यास्त से दो घण्टे पश्चात यह प्राणायाम किया जावे तो यह अनुमान लगाया गया है कि ६ महीने में अभ्यासी के शरीर में विशेष परिवर्तन हो जाता है, चेहरे की झुर्रियां दूर हो जाती हैं और मनुष्य शान्त प्रतीत होता है तथा आवाज़ में मधुरता आजाती है

"लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादःस्वरसौष्ठवञ्च" (श्वेताश्वतर उपनिषद्)

शरीर हल्का हो जाता है और नीरोग हो जाता है। विषयों की लालसा जाती रहती हैं। कान्ति बढ़ जाती है और स्वर मधुर हो जाता है।

हमारे शरीर के पांच अङ्ग समूह हैं—

Nervous system (स्नायु जाल)
Glandular system (ग्रंथिसमूह)
Respiratary system (श्वासोपयोगी अङ्ग समूह)
Cerculary system (रक्तवाहक अङ्ग समूह)
Digestive system (आहार का परिपाक करने वाला अङ्ग समूह)

ये सब अङ्ग समूह तभी कार्य ठीक करते हैं, जब प्राणायाम का अभ्यास नियम पूर्वक किया जावे।

Dr. Volgyesi अपनी पुस्तक "A message to the neurotic world" में लिखते हैं कि "मनोविकारों को दमन करने के लिए और मानसिक तथा शारीरिक समता को प्राप्त करने के लिए प्राणायाम एक बहुत आवश्यक साधन है"

शरीर में दो शक्तियां काम कर रही हैं—एक पाचन शक्ति और दूसरी उत्सर्जन शक्ति। यदि पाचन शक्ति तेज हो और उत्सर्जन शक्ति कमजोर

हो, तब भी शरीर ठीक काम नहीं करता। उनमें समता लानी आवश्यक है। प्राणायाम द्वारा ही समता लाई जा सकती है।

हमारे फेफड़े एक स्पञ्ज के समान हैं। सारे फेफड़े में रक्त की शिरायें और वायु के cells हैं। अनुमानत: ७२०००००० वायु सैल्स हैं। साधारण अवस्था में दो करोड़ वायुगृहों में प्राणवायु पहुंचता है। शेष ५ करोड़ किसी समय में काम में लाये जाते हैं।

विश्राम के समय	३०० cubic inch
चलते समय	४०० cubic inch
दौड़ने में	७०० cubic inch
घोड़े की सवारी में	१२०० cubic inch

प्राणवायु प्रति मिनट फेफड़ों में पहुंचती है। परन्तु प्राणायाम द्वारा समस्त वायुगृहों में शुद्ध वायु का प्रवेश हो जाता है।

प्रोफैसर ओशिया और डा० कैलगसे (Kellegsay) का यह मत है—"The actual daily ration of air i. e. the amount of fresh

air each person requires is about forty to fifty thousand cubic feet."

प्रत्येक व्यक्ति के लिए ४० से ५० हजार क्यूबिक फीट शुद्ध और ताजा वायु प्रतिदिन चाहिए।

Dr. Eustace Miles लिखते हैं—"I must emphasize the importance of practising the deep and full breath at frequent intervals through out the day. The ordinary breath of the ordinary civilized person is neither deep nor full."

"मैं एक दिन में कई बार प्राणायाम करने की आवश्यकता पर जोर देना चाहता हूँ। साधारण सभ्य पुरुष का सांस न तो गहरा है और न ही पूरा है।

उपरोक्त उदाहरणों और प्रमाणों से स्पष्ट है कि शरीर को शुद्ध और स्वस्थ रखने के लिए प्राणायाम एक आवश्यक साधन है। Rockfeller की संस्था "Life Extension Institute" के निम्न १६ नियम स्वास्थ्य को उत्तम रखने के लिए प्रत्येक पाठक को स्मरण कर लेने चाहिएँ।

Air :—

1. Ventilate every room you occupy.
2. Wear light loose and porous clothes.
3. Seek out of door occupation and recreation.
4. Sleep out of doors if you can.

Food :—

5. Avoid over eating over weihgt.
6. Avoid excess of high protien foods such as flesh and eggs also excess of salt and highly seasoned foods.
7. Eat slowly and taste your food.
8. Use sufficient water internally and externally.
9. Eat some hard, some bulky and some row foods.

Poisons :—

10. Secure thorough intestinal elimination daily more than once.
11. Stand, sit and walk erect.

12. Do not allow poisons and infections to enter the body.
13. Keep the teeth gums and tongue clean.
14. Work, play, rest and sleep in moderation.
15. Take deep breathing exercises daily several times a day.
16. Keep serene and whole-hearted.

वायु-सम्बन्धीः—

१. अपने रहने के प्रत्येक कमरे को हवादार और प्रकाश युक्त रखो।

२. कपड़े थोड़े, ढीले और छिद्रे पहनो।

३. जहां तक हो सके अपने सब काम खुली हवा में करो।

४. रात को भी खुली हवा में सोओ।

भोजनः—

५. अधिक मत खाओ।

६. ऐसा भोजन मत करो जिसमें प्रोटीन की अधिकता हो जैसे मांस अण्डे आदि।

७. भोजन धीरे धीरे खाओ।

८. पानी का अन्दर-बाहर खूब प्रयोग करो।

९. कुछ कठोर, भारी और कच्ची खुराक खाओ।

विषः—

१०. एक बार से अधिक शौचादि से अपने आपको साफ करो।

११. हमेशा सीधे चलो, सीधे बैठो और सीधे खड़े होओ।

१२. अपने शरीरमें विषों को दाखिल मत होने दो।

१३. अपने दांत, मसूड़े और जबान साफ रक्खो।

क्रिया:—

१४. संयम से काम करो, खेलो, आराम करो और सोओ।

१५. दिन में कई बार प्राणायाम करो।

१६. हमेशा शान्त और प्रसन्न चित्त रहो।

उपरोक्त नियमों के पालन करने के पश्चात् मनुष्य योग के अभ्यास करने का अधिकारी हो सकता है।

अभ्यास करने के लिए उपयुक्त स्थान का होना आवश्यक है। वह स्थान निम्न प्रकार का हो—

"समे शुचौ शर्करावन्हिवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः। मनोऽनुकूले न तु चक्षुः पीडने गुहा निवाताश्रयणे प्रयोजयेत्" ॥

स्थान सम हो, शुद्ध हो, कंकर, अग्नि और वायु से शून्य हो, शब्द और जलाशय आदि से मन के अनुकूल हो, आंखों को पीड़ा देने वाला न हो, एकान्त हो तथा निर्वात हो। ऐसी जगह पर चित्त को योग में लगावे।

सिद्धासन पर वैठ, आंखे वन्द कर भ्रूमध्य में अपने ध्यान को वांधे। सबसे पहले २१ बार गायत्री का जप करे और उसके अर्थोंपर ध्यान दे। फिर ओ३म् अक्षर के दो भाग करले—ओ३+म्। ओ का मन से उच्चारण कर प्राण सहित भ्रूमध्य के स्थान पर उसकी ठोकर लगाये और "म" से उसी प्राण को धीरे धीरे बाहर निकाले। लगभग १५ मिनट तक ऐसा करे। फिर कुछ भी उच्चारण

न करे केवल भ्रूमध्य के स्थान को मन से विना आंखे खोले देखता रहे, और उसमें तन्मय होने का प्रयत्न करे। ६ महीने तक यह अभ्यास करे। इसके पश्चात् माथे में पूर्ववत् अभ्यास करे। अपने अभ्यास को धीरे धीरे बढ़ाते हुए ब्रह्म-रन्ध्र तक पहुँचाने की कोशिश करे और वहां ही ध्यान लगाया जावे। उस समय श्वेताश्वतर उपनिषद् के अनुसार निम्नरूप अनुभव होंगे।

नीहारधूमार्कानिलानलानां,
खद्योतविद्युत् स्फटिकशनीनाम्।
"एतानि रूपाणि पुरःसराणि
ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे"।

ब्रह्म के प्रगट करने वाले ये रूप पहले दीखेंगे—

कुहरा, धूआं, सूर्य, वायु, अग्नि, जुगनु, विद्युत् बिलौर और चन्द्र, ये सब रूप दीख कर सब शांत हो जाते हैं, तब आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है और ब्रह्म का प्रकाश हो जाता है।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ (देहली)
२३-१०-३७ } गोपाल

समाधिपाद

स
मा
धि
पा
द

मनुष्य के अन्दर दो स्वाभाविक शक्तियां हैं। एक पार्थिव बुद्धि की शक्ति (Physical intellect) और दूसरी प्रज्ञा अर्थात् सहज बुद्धि (Intuitive insight) । मनुष्य ने पार्थिव बुद्धि-शक्ति को खूब विकसित किया है और उस का पूरा उपयोग लिया है—परन्तु दूसरी शक्ति की अवहेलना हो गई है। पशु में Instinct (स्वाभाविक क्रिया शक्ति) है। मनुष्य में बुद्धि है। परन्तु जो मनुष्य दिव्य होना चाहते हैं, उन्हें प्रज्ञा (Intuition) का आश्रय लेना आवश्यक है। यह प्रज्ञा कोई

बुद्धि की विरोधी नहीं है और न ही स्वाभाविक क्रिया (Instinct) की विरोधी है। स्वाभाविक क्रिया और बुद्धि दोनों इसमें मिली हुई हैं। इसलिये सर राधाकृष्ण और वर्गसन (Bergson) ने ठीक लिखा है–'Intuition is a glorified instinct'–प्रज्ञा वैभवयुक्त स्वाभाविक प्रवाह की द्योतक है। सबसे प्रथम इसी प्रज्ञा को जागृत करना योग का ध्येय है। जब यह प्राप्त हो जाती है तो योग का एक भाग प्राप्त हो जाता है। अर्थात् सम्प्रज्ञात योग की सिद्धि हो जाती है। परन्तु योग इससे भी आगे जाता है। वह इस प्रज्ञा से भी ऊपर जाने का प्रयत्न करता है। वह क्या है? असम्प्रज्ञात योग, जिसमें सब क्रियायें शान्त हो जाती हैं। "तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधात् निर्बीजः समाधिः" इसी ऋतम्भरा प्रज्ञा के प्राप्ति के क्रम को समाधिपाद में वर्णन किया गया है और उसकी प्राप्ति के साधनों को साधनपाद में प्रगट किया है।

समाधिपाद में पहले योग का लक्षण किया है—"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" योग चित्त की वृत्तियों (व्यापार) के रोकने का नाम है। चित्त की अवस्थायें पांच हैं—क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र और निरुद्ध। पहली तीन अवस्थाओं में चित्त कुत्सित वृत्तियों का शिकार रहता है। एकाग्रावस्था में चित्त शुद्ध सात्विक वृत्तियां रखता है। निरुद्धावस्थाओं में जब सब वृत्तियों का लय हो जाता है, तब आत्मा अपने स्वरूप का साक्षात्कार करता है। यही योग का फल है। इसलिये पतञ्जलि मुनि लिखते हैं—"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" तब द्रष्टा की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है। यही परमावस्था है।

"प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥"

भगवान् कृष्ण का स्थिरप्रज्ञ का यह लक्षण है—जब मनुष्य सब कामनाओं को त्याग देता है और

अपनी आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है उसे स्थिर-प्रज्ञ कहते हैं। पतञ्जलि ऋषि का योगी और कृष्ण भगवान् का स्थिर-प्रज्ञ एक ही व्यक्ति है।

जिन वृत्तियों को रोकना है वे पांच प्रकार की हैं। उनके नाम यह हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति।

जो ज्ञान हमें अपनी इन्द्रियों द्वारा होता है वह प्रमाण वृत्ति के अन्तगत है।

विपर्य्यय मिथ्याज्ञान का नाम है। जैसे रस्सी में सांप का ज्ञान।

विकल्प केवल शब्द ज्ञान का नाम है।

निद्रा अभाव की प्रतीति का नाम है।

स्मृति वस्तु से शून्य अनुभव किये हुए विषयों को न भूलने का नाम है।

इन पांच वृत्तियों के अन्दर सब वृत्तियों का समावेश है। जब इनका उपयोग राग-द्वेष युक्त होकर किया जाता है तब वृत्तियां दुःख दायक होती हैं।

और जब इनका प्रयोग राग-द्वेष रहित होकर किया जाता है तब यह सुखदायक होती हैं। परन्तु योग तो सुख-दुःख से ऊपर की अवस्था का नाम है। भगवान् कृष्ण ने भी गीता में यही कहा है—समत्वं योग उच्यते, समदुःखसुखः क्षमी। "दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः" दुखों में मन उद्विग्न न हो और सुखों में लालसा न रहे। दुःख-सुख में एक जैसा रहना ही योग है। फिलेमन (Phileman) ने भी ठीक लिखा है, "In this thing one man is superior to another that he is better able to bear adversity and prosperity." इन वृत्तियों के रोकने के दो ही उपाय हैं—एक अभ्यास और दूसरा वैराग्य। "अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः" चित्त को स्थिर करने में सतत प्रयत्न करने का नाम अभ्यास है।

किसी विषय में तृष्णा न रहे, इसका नाम वैराग्य है। यह वैराग्य दो प्रकार का है। अपर-

वैराग्य और पर-वैराग्य। अपर-वैराग्य—जब किसी वस्तु में तृष्णा (Attachment) न रहे। पर-वैराग्य—जब किसी वस्तु के किसी गुण में भी तृष्णा या लगाव न रहे। इच्छा और तृष्णा में भेद है। इच्छा मनुष्य के अन्दर स्वाभाविक है। जब तक वह राग-द्वेष युक्त नहीं होती तब तक वह तृष्णा में परिवर्तित नहीं होती। इसलिये वैराग्य तृष्णा में त्याग का नाम है। इच्छा में त्याग का नाम नहीं है।

अपर-वैराग्य से सम्प्रज्ञात-समाधि मिलती है और पर-वैराग्य से असम्प्रज्ञात-समाधि प्राप्त होती है। सम्प्रज्ञात-समाधि वह है जिसमें तर्क की शक्ति, विचार की उच्चता, आनन्द और अस्मिता अनुगामी रहते हैं। परन्तु इस समाधि से कैवल्य प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि वृत्तियों का बीज रह जाता है। इस समाधि के भी चार भेद किये गये हैं।

१. सवितर्क समापत्ति (Realization of concrete objects)
२. निर्वितर्क समापत्ति (Realization of abstract objects)
३. सविचार समापत्ति (Concrete thinking)
४. निर्विचार समापत्ति (Abstract thinking)

सवितर्क समापत्ति—जब स्थूल प्रकृति को योगी साक्षात्कार करता है और इस स्थूल प्रकृति के तत्व, शब्द, अर्थ और ज्ञान से संयुक्त प्रतीत होते हैं।

निर्वितर्क समापत्ति — जब केवल स्थूल विषयों का साक्षात्कार करते हुए अर्थमात्र का साक्षात्कार होता है। स्थूल विषय—पञ्च महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) और पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां तथा ग्यारवें मन का नाम है। इसी प्रकार सूक्ष्म विषय (पञ्च-तन्मात्रा)—शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श का नाम

है। जब इनका ज्ञान, शब्द, अर्थ, ज्ञान से मिला हुआ साक्षात्कार होता है, तब वह सविचार समापत्ति में है। और जब केवल अर्थमात्र का भान करता है, तब वह निर्विचार समापत्ति में है। निर्विचार समापत्ति को सबसे श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि—"निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः" निर्विचार समाधि में प्रवीण हो जाने से चित्त की निर्मलता प्राप्त होती है। चित्त की अत्यन्त निर्मलता पर (Intuition) आश्रित है। "ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा" "तज्जयात् प्रज्ञालोकः" अर्थात् ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। यह प्रज्ञा (Intuition) है। परन्तु यहां ही हमें समाप्त नहीं करना है और रास्ता अभी तय करना है। वह रास्ता असम्प्रज्ञात योग का है; जिसमें सब अच्छे और बुरे संस्कारों का लय कर अपनी आत्मा का साक्षात्कार करना है। इसी को निर्बीज समाधि कहते हैं। इसमें उस प्रज्ञा (Intuition)

के संस्कार भी लय हो जायेंगे। यह ही परमावस्था है। उपनिषद् में भी लिखा है—

"यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहु परमां गतिम्"

जब सब ज्ञानेन्द्रियां मन सहित स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि चेष्टा से रहित हो जाती है; तब उस अवस्था को परम गति कहते हैं। परन्तु इस अवस्था तक पहुंचने में कई रुकावटें हैं। वे रुकावटें निम्न हैं—

"व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः"

"दुःखदौर्मनस्य अङ्गमेजयत्व श्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः"

बीमारी, भारीपन, शक करना, काम करने को जी नहीं चाहना, सम्मोह, मिथ्याज्ञान, उद्देश को प्राप्त न करके धैर्य को खो देना, दुःखी रहना,

मन में द्वेप करना, अङ्गों का हिलते रहना, अपने सांस पर आधिपत्य न होना, ये रुकावटें हैं। इनके दूर करने का उपाय, आन्तरिक धारणायें (Auto-Suggestions) हैं।

"तत प्रतिपेधार्थम् एकत्वाभ्यास:" इन रुकावटों का एकमात्र उपाय एक तत्व (Substratum) का अभ्यास है। अन्य भी कई अभ्यास हैं। वे निम्न हैं-

(१) "मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्यानां भावनातश्चित्तप्रसादनम्"

सुखी से मित्रता, दुःखी पर करुणा, पुण्यात्मा को देखकर प्रसन्नता और पापी से उपेक्षा. परन्तु घृणा किसी से भी न करें चाहे वह अधम से अधम पापी हो–Hate the sin and not the sinner. पाप से नफरत हो पापी से नफरत न हो।

(२) "प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य" प्राणों का वाहर फैंकना और अन्दर धारण करना जिसे अंग्रेजी में Deep-breathing कहते हैं।

(३) "विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धनी" नासिका के अग्रभाग या भ्रूमध्य में ध्यान लगाना; नाभिचक्र पर या जिह्वा के अग्रभाग पर ध्यान लगाना।

(४) "विशोका वा ज्योतिष्मती" हृदय कमल पर ध्यान लगाना।

(५) "स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा" स्वप्न ज्ञान तथा निद्राज्ञान पर ध्यान लगाना।

(६) "यथाऽभिमतध्यानाद् वा" जिस उपयुक्त वस्तु में ध्यान लगाने की इच्छा हो वहीं ध्यान लगाना

ये छः अभ्यास हैं। इनमें से मनुष्य यदि एक का भी अभ्यास करे, तो योग के मार्ग में जो विघ्न हैं, वे सब दूर हो जावेंगे।

योगी की प्रयोगशाला में मन ही एक यन्त्र है। ध्यान और वैराग्य ही उस यन्त्र को प्रयोग में लाने के साधन हैं। जब हम इस तत्त्व के सम-

झने के योग्य होंगे, तब योग दर्शन का समझना सरल हो जावेगा।

श्री स्वामी विवेकानन्द जी के निम्न वचन उपरोक्त आशय को स्पष्ट करेंगे।

"The powers of the mind are like the rays of the Sun dissipated, when they are concentrated, they illumine"

मन की शक्तियां सूर्य की बिखरी हुई रश्मियों के समान हैं। जब वह एक स्थान पर एकत्रित हो जाती हैं तो प्रकाश पैदा करती हैं।

—❀—

योगदर्शन

समाधिपाद

"अथ योगानुशासनम्" ॥१॥

अब योग की शिक्षा देने वाले शास्त्र का आरम्भ करते हैं।

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" ॥२॥

चित्त की वृत्तियों (व्यापार) के रोकने का नाम योग है।

"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" ॥३॥

तब द्रष्टा (आत्मा) की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है। अर्थात् चित्त की वृत्तियां रुकने पर अपनी आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है।

"वृत्तिसारूप्यमितरत्र" ॥४॥

दूसरी अवस्था में चित्त की वृत्तियों के न रुकने पर जैसी वृत्ति होगी उसी के सदृश आत्मा का रूप दिखलाई देगा "As a man Thinketh so is he"

"वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः" ॥५॥

वृत्तियां पांच प्रकार की हैं। चाहे वे राग द्वेष आदि के कारण क्लेश देने वाली हों और चाहे वे राग द्वेष के नाश होने के कारण सुख देने वाली हों।

Note—योग का ध्येय सब प्रकार की वृत्तियों का रोकना है चाहे वह सुख देने वाली हों या दुःख देने वाली हों। सुख और दुःख से ऊपर की अवस्था का नाम योग है।

"प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः" ॥६॥

उन वृत्तियों के नाम निम्न हैं—

प्रमाण=इन्द्रियों द्वारा प्राप्त यथार्थ ज्ञान

विपर्यय=मिथ्या ज्ञान

विकल्प=वस्तु से शून्य केवल शब्द ज्ञान

निद्रा=अभाव की प्रतीति का ज्ञान

स्मृति=अनुभव हुए विषयों का सदा स्मरण

"प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि" ॥७॥

वह प्रमाण तीन प्रकार का है—

प्रत्यक्ष=प्रकृति के साथ संसर्ग से जो इन्द्रियों द्वारा मनुष्य को ज्ञान होता है; उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

अनुमान=बादलों को देखकर वर्षा की कल्पना करनी अनुमान प्रमाण है।

आगम=आप्त पुरुषों के कथनों पर श्रद्धा रख

या शास्त्र पर विश्वास रख कर जो ज्ञान उपलब्ध किया जावे—वह आगम प्रमाण है।

"विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्" ॥८॥

वह मिथ्याज्ञान जो पदार्थ के वास्तविक रूप को प्रकट नहीं करता विपर्यय कहलाता है। जैसे रस्सी में सांप का ज्ञान मिथ्याज्ञान है। सीप को चांदी समझना मिथ्याज्ञान है।

"शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः" ॥९॥

जो ज्ञान केवल कल्पित है और वस्तु से शून्य है—अर्थात् हकीकत में उस वस्तु की कोई सत्ता नहीं, उसे विकल्प वृत्ति कहते हैं। यथा—सोने का पहाड़। वन्ध्या का पुत्र। ये कल्पनायें वस्तु से शून्य हैं और इनकी कोई सत्ता नहीं। बिना विचारे कोई क्रिया करनी और झट परिणाम पर पहुँच जाना भी विकल्प वृत्ति है।

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥१०॥

जिस वृत्ति से अभाव की प्रतीति हो—उसे निद्रावृत्ति कहते हैं। जैसे—गाढ़ निद्रा से जब मनुष्य उठता है, तो कहता है कि मैं आज खूब सोया और बेखबर सोया। यह बेखबर होने का ज्ञान भी एक वृत्ति है, उसे निद्रावृत्ति कहते हैं।

"अनुभूत विषयाऽसम्प्रमोषः।
स्मृतिः" ॥११॥

अनुभूत विषयों का वार २ याद आना और उनका न मिटना स्मृतिवृत्ति कहलाती है।

इन पांच प्रकार की वृत्तियों को रोकना योग का ध्येय है। इन वृत्तियों में समस्त वृत्तियों का समावेश हो गया है। जैसे गाढ़ निद्रा में मन का सब व्यापार रुक जाता है; ठीक इसी प्रकार योग निद्रा में मन के सब व्यापार रुक जाते हैं, चाहे वे व्यापार हमारे अनुकूल और सुखदायक हों

या प्रतिकूल और दुःखदायक। "समत्वं योग उच्यते" योग समावस्था का नाम है; जो सुख दुःख से ऊपर की अवस्था है। जब तक मन का व्यापार स्वतन्त्ररूप से चलता है, तभी तक सुख दुःख है, राग द्वेष है। गाढ़निद्रा तथा योगनिद्रा में भेद यह है कि गाढ़निद्रा तमोगुणी होने के कारण Under-consciousness की अवस्था की द्योतक है। इसीलिये उसे भी वृत्ति कहा है। और योग निद्रा सतोगुणी होने के कारण Super-consciousness की अवस्था की द्योतक है।

"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः" ॥१२॥

—इन वृत्तियों के रोकने के दो ही उपाय हैं—एक अभ्यास और दूसरा वैराग्य।

"तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः" ॥१३॥

चित्त के ठहराने में जो बार २ प्रयत्न करना है, उसे ही अभ्यास कहते हैं।

"स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारा-सेवितो दृढ़भूमिः" ॥१४॥

वह अभ्यास दीर्घकाल तक लगातार श्रद्धा-पूर्वक बार २ सेवन किया हुआ दृढ़ अवस्था वाला हो जाता है।

"दृष्टानुश्रविकं विषय वितृष्णस्य-वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्" ॥१५॥

जिस पुरुष को देखे हुए तथा सुने हुए विषयों में कोई तृष्णा—(Attachment) नहीं रही; उस पुरुष का वैराग्य वशीकार नामी वैराग्य है।

"विकारं हेतौ सतिं विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः"

विकार सामग्री के उपस्थित होने पर भी जिन पुरुषों के चित्त विकृत नहीं होते वे ही धीर हैं; वे ही सच्चे विरक्त हैं। चित्त की ऐसी अवस्था ही वशी-कार संज्ञा वराग्य है। इसे ही अपर वैराग्य कहते हैं।

"तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्णयम्" ॥१६॥

आत्मा के साक्षात्कार होने से प्रकृति में तृष्णा रहित होना पर-वैराग्य कहलाता है।

नोट—जैसे वैराग्य दो प्रकार का है—अपर वैराग्य और पर वैराग्य—इसी प्रकार समाधि भी दो प्रकार की है-सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि। अपर वैराग्य से सम्प्रज्ञात समाधि और पर वैराग्य से असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है। अब इन समाधियों का लक्षण करते हैं।

"वितर्क विचारानन्दास्मितानु-
गमात्सम्प्रज्ञातः ॥१७॥

स्थूल तथा सूक्ष्म विषयों के साक्षात्करने के लिये और आनन्द तथा अस्मिता (अहं भाव) भाव को साक्षात् करने के लिये जो समाधि लगाई जाती है, उसे सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। अर्थात्—

वितर्कानुगतसमाधि=स्थूलविषयानुगतसमाधि
विचारानुगतसमाधि=सूक्ष्मविषयानुगतसमाधि
अस्मितानुगतसमाधि=अहंविषयानुगतसमाधि
आनन्दानुगतसमाधि=इन्द्रियों के विषयों को साक्षात करने के लिये समाधि।

कई भाष्यकार इस सूत्र का निम्न अर्थ भी करते हैं—जिस समाधि द्वारा मनुष्य के अन्दर विशेष तर्क, विशेष विचार और विशेष आनन्द और अस्मिता (Egoism) की शक्तियों का विशेष रूप से उद्भव होता है—वह सम्प्रज्ञात अवस्था है।

"विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कार-
शेषोऽन्यः" ॥१८॥

जिस अभ्यास के कारण सब मानसिक क्रियायें शान्त हो चुकी हैं, केवल संस्कारमात्र शेष रह गये हैं—उसे असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं।

सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा मनुष्य की वृत्ति एकाग्र होती है। "A man of one idea, one book" जिसे कहते हैं, उसी को योग में सम्प्रज्ञात अवस्था कहा है। जब यह एकाग्र वृत्ति भी बन्द हो जाती है और सर्वथा निरुद्धावस्था प्राप्त हो जाती है, तब असम्प्रज्ञात समाधि मिलती है।

"भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्"॥१६॥

विदेह वे हैं, जिन्होंने स्थूल प्रकृति का साक्षात्कार कर लिया है और देह के तत्त्व को भी जान लिया है; देह में जिन्हें कोई अभिमान नहीं रहा, वे विदेह कहलाते हैं।

प्रकृतिलय वे हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण प्रकृति तक का साक्षात् किया है अर्थात सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रकृति का भी ज्ञान उनको हो गया है; परन्तु अभी आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ था कि उनका देह छूट गया—वह प्रकृतिलय कहलाते हैं। इन विदेह और प्रकृतिलयों को भवप्रत्यय समाधि

होती है। जब वे पुनः जन्म लेते हैं, तो जन्म से समाधि सिद्ध होते हैं। यथा—शुक थे।

"श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्" ॥२०॥

जो विदेह और प्रकृतिलयों से भिन्न हैं, उनको पहले श्रद्धा धारण करनी चाहिए। श्रद्धा से उत्साह बढ़ेगा, उत्साह से ध्यान लगाने की शक्ति उत्पन्न होगी, ध्यान से समाधि होती है और समाधि से प्रज्ञा का विवेक बढ़ता है जिससे योगी यथावत वस्तु को जान सकता है। इसे उपायप्रत्ययसमाधि भी कहते हैं।

"तीव्रसंवेगानामासन्नः" ॥२१॥

तीव्र वैराग्य वालों को समाधि और उसका फल निकट होता है।

"मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः" ॥२२॥

वह तीव्र वैराग्य भी तीन प्रकार का है—
मृदुतीव्र वैराग्य से निकट समाधि।
मध्यतीव्र वैराग्य से निकटतर समाधि।
अधिमात्रतीव्र वैराग्य से निकटतम समाधि।

मृदु का अर्थ नरम है। मध्य का अर्थ दरम्यान है। अधिमात्र का अर्थ अधिक तेज है। अब समाधि के अन्य उपाय भी बतलाते हैं।

"ईश्वरप्रणिधानाद्वा" ॥२३॥

अनन्यचित्त होकर ईश्वर की भक्ति करना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। ईश्वर प्रणिधान से भी निकटतम समाधि होती है।

ईश्वर का लक्षण क्या है? इसे अगले सूत्र में बतलाते हैं।

"क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः" ॥२४॥

क्लेश कर्म और उसका फल तथा वासनाओं से न छुवा गया जो पुरुष विशेष है, वह ईश्वर है। पुरुष विशेष ईश्वर को इसलिये कहा गया है कि वह इस संसाररूपी पुरी में निवास करता है। मनुष्य को भी पुरुष कहते हैं। वह इसलिये कि वह शरीररूपी पुरी में निवास करता है।

"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्" ॥२५॥

सर्वज्ञता का बीज उसमें निरतिशय है। निरतिशय का अर्थ है—जिससे बढ़कर कोई न हो। अर्थात् परमात्मा में ही सर्वज्ञता की पराकाष्ठा है।

"पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" ॥२६॥

कालातीत होने के कारण वह उनका भी गुरु है, जो संसार के आदि में गुरु हुए हैं।

"तस्य वाचकः प्रणवः" ॥२७॥

उसका निज नाम ओ३म् है।

"तज्जपस्तदर्थभावनम्" ॥२८॥

उसका जप और उसके अर्थ का चिन्तन करना ही प्रणिधान है।

कई विद्वान् इस सूत्र का यह भी अर्थ करते हैं—उसके जप करने का प्रयोजन उसके अर्थ की भावना करना है।

अब प्रणिधान का फल बतलाते हैं—

"ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च" ॥२९॥

इस प्रकार उपासना करने से अपने आत्मा का साक्षात्कार होता है और विघ्नों का अभाव होता है। वे विघ्न निम्न हैं—

"व्याधि स्त्यान संशय प्रमाद आलस्याऽविरति भ्रान्तिदर्शनाऽलब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः"

॥३०॥

व्याधि=शारीरिक रोग

स्त्यान=भारीपन, काम करने को दिल न करना

संशय=सन्देह करना

प्रमाद=असावधानता

आलस्य=सुस्ती

अविरति=विषयों में तृष्णा बनी रहना

भ्रान्तिदर्शन=मिथ्या ज्ञान

अलब्धभूमिकत्व=समाधि तक न पहुंच सकना।

अनवस्थितत्व=समाधिभूमि को पाकर भी चित्त का उसमें न ठहरना। ये चित्त के विक्षेप हैं और योग में रुकावटें हैं।

"दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः" ॥३१॥

दुःख = क्लेशयुक्त रहना

दौर्मनस्य = इच्छा के पूर्ण न होने से मन में क्षोभ होना।

अङ्गमेजयत्व = शरीर के अङ्गों का कांपना

श्वासप्रश्वास = अपनी इच्छा के बिना ही बाहर से वायु का अन्दर आना और अन्दर से वायु का बाहर जाना। ये भी विक्षेप के साथ होते हैं।

"तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः" ॥३२॥

इन विक्षेपों के रोकने के लिये किसी एक तत्व का अभ्यास करना चाहिये।

अब और उपाय बतलाते हैं—

"मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःख-पुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्त-प्रसादनम्" ॥३३॥

सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा और पापियों के विषय में क्रमशः मित्रता, दया, हर्ष और उपेक्षा से चित्त निर्मल होता है। इस सूत्र में राग द्वेष से रहित होने का उपदेश है। "Hate the sin and not the sinner" यह इसका भावार्थ है।

"प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य" ॥३४॥

प्राणायाम (Deep breathing) से मन स्थिर होता है।

प्रच्छर्दन=प्राण का बाहर फेंकना

विधारण=प्राण का अन्दर धारण करना

"विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी" ॥३५॥

विषयों वाली प्रवृत्ति, उत्पन्न होकर मन की स्थिति को बांधने वाली होती है।

नासिका के अग्रभाग पर ध्यान लगाने से दिव्य गन्ध और जिह्वा के अग्रभाग पर ध्यान लगाने से दिव्य रस का ज्ञान उपलब्ध होता है और चित्त भी स्थिर होता है। इस प्रकार के ध्यान "विषयवती प्रवृत्ति" के नाम से प्रगट किये गये हैं।

"विशोका वा ज्योतिष्मती" ॥३६॥

शोकरहित जो प्रकाश वाली प्रवृत्ति है, उसमें ध्यान लगाने से मन स्थिर होता है।

सूत्र का इशारा हृदयकमल में सुषुम्नानाड़ी की ओर है। इसमें ध्यान लगाने से मन को स्थिरता प्राप्त होती है।

"वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥३७॥

विरक्त महात्मा पुरुषों की जीवनी पर ध्यान लगाने से भी मन स्थिर होता है।

"स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा" ॥३८॥

स्वप्नज्ञान तथा निद्राज्ञान को साक्षात् करने से भी चित्त स्थिर होता है।

"यथाभिमतध्यानाद्वा" ॥३९॥

जिसको जो अभिमत है, उसके ध्यान से भी चित्त स्थिर हो जाता है।

"परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः" ॥४०॥

इस प्रकार चित्त परमाणु से लेकर यह परम-महत् तक ध्यान लगाने में सामर्थ्यवान् हो जाता है। जहां ध्यान लगावेगा वहीं चित्त स्थिर हो जावेगा।

"क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणे र्ग्रहीतृ ग्रहण ग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनतासमापत्तिः" ॥४१॥

जो चित्त वृत्तियों से सर्वथा क्षीण हो चुका है, वह शुद्ध मणि की तरह किसी भी पदार्थ में जब ध्यान लगाता है, तब उसमें स्थित होकर तन्मय हो जाता है, चाहे वह ध्यान ज्ञाता में हो या ज्ञान में हो या ज्ञेय में हो।

"शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा-सवितर्का समापत्तिः" ॥४२॥

वह समापत्ति चार प्रकार की है—

१. सवितर्क समापत्ति
२. निर्वितर्क समापत्ति
३. सविचार समापत्ति
४. निर्विचार समापत्ति

इस सूत्र में सवितर्क समापत्ति का लक्षण करते हैं। जब शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्पों से मिली हुई समाधि हो तब वह सवितर्क समापत्ति कहलाती है।

"स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्र-निर्भासा निर्वितर्का" ॥४३॥

बुद्धि के निर्मल हो जाने पर स्वरूप से रहित जो केवल अर्थमात्र को प्रगट करने वाली समाधि है, वह निर्वितर्क समापत्ति है। सवितर्क और निर्वितर्क समापत्ति का सम्बन्ध केवल स्थूल विषयों तक है। दोनों सूत्रों का तात्पर्य यह है कि जब चित्त को स्थूल विषयों में तन्मय होते हुए शब्द अर्थ और ज्ञान अलग २ भासते हैं, तब वह सवितर्क समापत्ति की अवस्था में है और जब उसे केवल अर्थमात्र भासता है तब चित्त निर्वितर्क समापत्ति की अवस्था में है।

"एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता" ॥४४॥

इसी प्रकार चित्त में सूक्ष्म विषयों में ध्यान लगाने से सविचार तथा निर्विचार समापत्ति के दो भेद समझे जाने चाहिए।

"सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम्" ॥४५॥

सूक्ष्मविषयता प्रकृतिपर्यन्त है।

"ता एव सबीजः समाधिः" ॥४६॥

उपरोक्त चार समापत्तियां ही सबीज समापत्ति हैं। अर्थात यहां तक संसार का बीज बना रहता है। इन चारों में निर्विचार समापत्ति सब में बढ़कर है। अब यह दिखलाते हैं।

"निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः" ॥४७॥

निर्विचार समापत्ति में प्रवीण हो जाने से चित्त की निर्मलता उपलब्ध होती है।

"ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा" ॥४८॥

उस निर्मलता के प्राप्त होने से ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है। इसी को Intuition कहते हैं। ऋतम्भरा = सचाई को धारण करने वाली।

"श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्" ॥४९॥

यह प्रज्ञा आगम तथा- अनुमान से भिन्न है और अन्य विषय वाली है। यह विशेष विषय वाली है। दूसरे शब्दों में Intuition और Physical intellect का भेद यहां दर्शाया है।

"तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी" ॥५०॥

इससे उत्पन्न होने वाले संस्कार दूसरे संस्कारों को बांधने वाले होते हैं।

"तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः" ॥५१॥

जब वे भी रुक जाते हैं, तब सब संस्कारों के रुक जाने पर निर्बीज समाधि होती है।

साधनपाद

सा
ध
न
पा
द

इस पाद में मुख्य दो साधनों का उल्लेख है। एक कर्मयोग का और द्वितीय राजयोग का। वस्तुतः पतञ्जलि का कर्मयोग राजयोग का एक भाग है। राजयोग का ही मुख्यतया इस पाद में वर्णन समझना चाहिये। कर्मयोग का लक्षण निम्न प्रकार किया गया है—

"तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः"

तप, स्वाध्याय और ईश्वरार्पण होकर कार्य करना क्रियायोग है। द्वन्द्वों का सहन, राग द्वेष, सुख दुःख, क्षुधा पिपासा, तथा शीत उष्ण पर

विजय प्राप्त करना ही तप है। स्वाध्याय ईश्वर का जप तथा सत् शास्त्रों के पठन पाठन का नाम है। सब काम निष्काम भाव से ब्रह्मार्पण होकर करना ईश्वरप्रणिधान कहलाता है।

गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को यही उपदेश दिया है।

"सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्"
"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"
"तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर"

इन पदों का सारांश यह है कि कर्मफल के त्याग की भावना को लक्ष्य में रखकर काम करो। काम करने में तेरा अधिकार है; फल में तेरा अधिकार नहीं है। असङ्ग होकर कार्य करो। इसे ही ईश्वरप्रणिधान कहते हैं।

परन्तु मेरी सम्मति में पातञ्जल कर्मयोग और गीता के कर्मयोग में कुछ भेद भी है। वह यह है कि पातञ्जल कर्मयोग एक साधनमात्र है। वह इस-

लिये है कि समाधि की उत्पत्ति हो और जो क्लेश हैं वे सूक्ष्म हो जावें। यथा मुनि कहते हैं—
"समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च"।

गीता का कर्मयोग एक निष्ठा है—

"लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ"
"ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्"

भगवान् कहते हैं कि दो निष्ठायें मैंने कही हैं—ज्ञानियों के लिये ज्ञानयोग और योगियों के लिये कर्मयोग—ये दो निष्ठायें हैं। इनमें से किसी एक मार्ग का अवलम्बन करने से मनुष्य का कल्याण हो सकता है। गीता में कई स्थानों पर इस कर्मयोग का निष्ठारूप में विधान है।

"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः"
जनक आदियों ने कर्म से ही सिद्धि को प्राप्त किया, अर्थात् मुक्त हुए।

पातञ्जल कर्मयोग तो केवल क्लेशों को सूक्ष्म करने के लिये है। वे क्लेश निम्न हैं—

"अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश"

अविद्या = मिथ्या ज्ञान का नाम है। (Nescience)

अस्मिता = अहंकार को कहते हैं (Egoism)

राग = सम्मोह (Attachment)

द्वेष = घृणा (Aversion)

अभिनिवेश = मृत्यु का भय (Clinging to life)

ये क्लेश जब कर्मयोग द्वारा सूक्ष्म हो जाते हैं, तो सूक्ष्म हुए २ क्लेश, विचार, ध्यान तथा (Auto suggestion) द्वारा सर्वथा हटाये जा सकते हैं।

"ध्यानहेयास्तद्वृत्तय:"

जबतक ये क्लेश रहेंगे तबतक कर्माशय अर्थात् वासनायें पैदा होती रहेंगी और तबतक ही जाति, आयु और भोग बना रहेगा। इसलिये इन

क्लेशों को उखाड़ फेंकने का उपाय राजयोग है। इस राजयोग की विस्तृत व्याख्या इस पाद में है।

पूर्व इसके कि इन आठ अङ्गों का वर्णन किया जावे यह देखना है कि हमें बीमारी क्या है? उस बीमारी का कारण क्या है? उसको हटाने के लिये क्या उपाय है? इसे योग की भाषा में हेय, हेयहेतु, हान और हानोपाय कहते हैं।

जो भविष्य में आने वाला दुःख है, वह हेय है। "हेयं दुखमनागतम्" यह हमारी बीमारी है।

इस दुःख का कारण दृश्य और द्रष्टा का अविद्या से पैदा हुआ संयोग है; इसे हेयहेतु कहते हैं। "द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः"। "तस्य हेतुरविद्या"।

इस अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव हो जाना, हान कहाता है। "तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्"।

उस हान का उपाय निर्मल विवेकख्याति है।
"विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः"

इस विवेकख्याति की प्राप्ति के लिये आठ साधन हैं, जिन्हें अष्टांगयोग या राजयोग कहते हैं। वे आठ अङ्ग निम्न हैं—

१. यम=अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।
२. नियम=शौच, सन्तोप, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान।
३. आसन=जिसमें मनुष्य स्थिरता पूर्वक तथा सुखपूर्वक पर्याप्त समय तक रह सके। (स्थिरसुखमासनम्)
४. प्राणायाम=प्राणों को अन्दर तथा बाहर फेंकना (Deep breathing) (प्रच्छर्दन-विधारणाभ्यां वा प्राणस्य)
५. प्रत्याहार=इन्द्रिय संयम (Supreme control of the sense organs)

६. धारणा=चित्त को किसी विशेष स्थान या वस्तु पर बांधना

७. ध्यान=उस धारणा में सतत ज्ञान का प्रवाह (An incessant flow of knowledge in that intended object)

८. समाधि=उस ध्यान में इतना निमग्न होना कि उसमें पूर्ण तल्लीनता हो जाय।

यमों की व्याख्या—

(१) अहिंसा=सार्वभौमिक प्रेम। मनसा, वचसा, तथा कर्मणा, कभी कोई ऐसा काम न करना जिससे दूसरे को हानि होती हो।

(२) सत्य=जो कुछ हृदय में है, उसको उसी रूप में प्रकट करना और उसी के अनुसार ही आचरण करना।

(३) अस्तेय=चोरी न करना, धन में लोलुपता का न होना।

(४) ब्रह्मचर्य = वीर्यरक्षा, अपने शारीरिक बल को सुरक्षित रखना।

(५) अपरिग्रह = अपनी कोई मिलकियत न बनाना।

नियमों की व्याख्या—

(६) शौच = शारीरिक तथा आन्तरिक सफ़ाई।

(७) सन्तोष = सब्र तथा धैर्य्य रखना।

(८) तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान की पहले व्याख्या कर चुके हैं।

योग में मुख्य दो आसन हैं—सिद्धासन और पद्मासन।

Dr. Fisher (डा० फ़िशर) L. L. D लिखते हैं :—

Posture reflects character. It is also closely associated with self respect. The rule of the correct posture should be head up, chin in, chest out and

stomach in. Pains erroniously ascribed to Rhuematisin or Sciatica are often due to faulty posture. Faulty posture may mar the future of the individual by causing special curvature and physical deformities that interfere with physical and mental efficiency throughout life tending to lower the resistance to disease.

आसन से चरित्र का प्रकाशन होता है। इस का आत्मसन्मान से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। शुद्ध आसनप्रकार यह है—सिर सीधा रहे, ठोड़ी अन्दर को हो, छाती उभरी हो, पेट भीतर को लगे। जो दर्द जोड़ों में होती है वह भी अकसर अशुद्ध आसन के कारण होती है। अशुद्ध आसन के कारण रीढ़ की हड्डी में विकार पैदा हो जाता है। इससे शारीरिक कुरूपता पैदा हो

जाती है और उसका दुष्परिणाम यह होता है कि मानसिक शक्तियों का ह्रास हो जाता है और बीमारी आसानी से आक्रमण करती है।

सिद्धासन का फल ब्रह्मचर्य में प्रवीणता प्राप्त करना है। पद्मासन करने से कई शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं तथा द्वन्द्वों का सहन होता है। "ततो द्वन्द्वानभिघातः"।

प्राणायाम एक नूतन साइन्स के रूप में प्रगट हो रही है। Rockfeller (राकफैलर) की बनाई हुई Life Extension Institute द्वारा जो पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, उनमें से एक पुस्तक 'How to Live' है। इसके पढ़ने से इस विषय पर सम्यक्तया प्रकाश पड़ेगा।

Dr. Fisher (डा० फिशर) लिखते हैं—

A hundred deep breaths a day is one physician's recipe for avoiding tuberculosis. A Russian author who

suffered a nervous breakdown and who tried many other aids to health without success, finally went to the mountains for several months and found that a retired life in which simple deep breathing exercises practised systematically every day formed the central theme, effected a cure.

क्षय रोग को दूर करने का एक नुसखा यह है कि एक सौ गहरे श्वास प्रतिदिन लिये जावें। रूस का एक लेखक जो स्नायु दुर्बलता का शिकार बन गया था और जिसने बेशुमार इलाज किये, वह अन्त में पर्वत पर कुछ मास के लिये विश्राम लेने गया। वहां पर प्रतिदिन के साधारण प्राणायाम (गहरे श्वास लेना) से उसको सम्पूर्ण लाभ प्राप्त हो गया।

Mckenzie (मकेंजी साहब) लिखते हैं—

The effects of deep breathing exercises alone are tonic and stimulating and have a marked effect on the weight. Richter in his classes for voice training, uses deep breathing exercises as a routine measure. He finds that in two and one-half months, there was an average gain of nine pounds in whole class of students.

प्राणायाम अपने आप में टानिक या पौष्टिक आहार का काम देता है और वजन को भी बढ़ाता है। रिष्टर ने अपनी संगीत की क्लासों में प्राणायाम विधि का प्रयोग किया और उसको ढाई मास में ही आश्चर्य जनक सफलता प्राप्त हुई।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्राणायाम का स्वास्थ्य पर कितना अच्छा प्रभाव पड़ता है।

स्वास्थ के अतिरिक्त इसके मानसिक लाभ भी अनेक हैं। Emmanual Kant (कांट) जो जर्मनी के एक प्रसिद्ध दार्शनिक हुए हैं वह नित्यप्रति प्राणायाम करते थे और उनकी जीवनी में लिखा है "He practised deep breathing faithfully every day and rejoiced in having fresh air circulating in the brain. Deep breathing also cheers up a depressed person and substitutes a feeling of good spirits."

वह प्रतिदिन प्राणायाम का प्रयोग करता था। उसे ताजा वायु को अपने मस्तिष्क में भरने से प्रसन्नता होती थी। प्राणायाम मुर्दादिल में तरोताजगी भर देता है और प्रसन्नता पैदा करता है। औषधि विज्ञान का नूतन विचार यह है—

"In ordinary breathing only about ten percent of the lung contents is

changed at each breath. In deep breathing a much larger percentage is changed, the whole lung is forced into action and the circulation of the blood in the abdomen is more efficiently maintained, thus equalizing the circulation throughout the body. The blood pressure is also favourably influenced, especially where increased pressure is due to nervous or emotional causes.

साधारण श्वासोच्छ्वास में प्रत्येक श्वास के समय फेफड़े का लगभग दस प्रतिशत भाग परिवर्तित हो जाता है। प्राणायाम के समय यह परिवर्तन बहुत अधिक मात्रा में होता है। समस्त फेफड़ा प्रगतिशील हो जाता है और उदर का रक्त संचालन अधिक मात्रा में होने लगता है। इस प्रकार सारे शरीर में रक्त समान मात्रा में

संचालित होता है। रक्त-दबाव (Blood Pressure) पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। विशेष रूप में उस अवस्था में जब कि रक्त-दबाव स्नायु सम्बन्धी अथवा भावोत्पादक कारणों से हो।

William Jesse Feiring की पुस्तक Personal Hygiene में निम्न वाक्य बड़े महत्व के हैं, पृष्ठ 217,218.

"The mode of our breathing is closely related to our mental condition, either influences the other. Agitation makes us catch our breath and sadness makes us sigh. Conversely slow even breathing calms mental agitation. It is not without reason that in the east breathing exercises are used as a means

of cultivating mental poise and as an aid to religious life."

हमारे श्वासोच्छ्वास का प्रकार हमारी मानसिक स्थिति पर निर्भर रहता है। इन दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। मानसिक क्षोभ से हमारा श्वास रुकने लगता है और उदासी से हम ठण्डे श्वास लेने लगते हैं। इसके विपरीत धीमे और सम-श्वास से हमारा मानसिक क्षोभ शान्त हो जाता है। यह बात अकारण ही नहीं है कि पूर्वीय देशों में प्राणायाम को मानसिक शान्ति के प्राप्त करने का तथा धार्मिक जीवन बनाने का उपाय बनाया गया है।

इसी भाव को विशेष श्रम से पतञ्जलि ने योग दर्शन में प्रकट किया है।

"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्"

तब मनुष्य के अन्दर जो नैसर्गिक प्रकाश का स्रोत है, उस पर अज्ञान, राग, द्वेष आदि का

जो परदा पड़ा हुआ है—वह प्राणायाम के करने से नष्ट हो जाता है।

धारणासु च योग्यता मनसः

मन को एकाग्र करने की योग्यता उत्पन्न होती है, अर्थात् मन शान्त होने लगता है, आध्यात्मिक गम्भीरता उत्पन्न होती है।

उपरोक्त उदाहरण देने का प्रयोजन केवल इतना ही है कि विदेशी लेखक तथा विद्वान भी प्राणायाम को कितना महत्व दे रहे हैं।

प्रत्याहार=इन्द्रियों को अपने २ विषयों में से आसक्त होने से लौटा लेने का नाम प्रत्याहार है। इन्द्रियसंयम ही प्रत्याहार है। किसी सुन्दर वस्तु को देखना अथवा सुनना पाप नहीं—परन्तु उसमें इतना लम्पट हो जाना कि मनुष्य रातदिन उसी की चिन्ता में निमग्न रहे यह बुरा है—इसे रोकना ही प्रत्याहार कहाता है। Mrs. Annie Besant (ऐनी बसन्त) ने लिखा है "Live in

the world but not of it". संसार में रहो किन्तु उसमें लिप्त न हो जाओ। इसे ही प्रत्याहार समझना चाहिये।

इस प्रत्याहार का फल यह है—

"ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्"

प्रत्याहार से इन्द्रियां सम्पूर्णतया वश में हो जाती हैं।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार इन पांच साधनों का वर्णन इस द्वितीय पाद में है, शेष तीन साधनों का वर्णन तीसरे पाद में है। उनका भाव उसी पाद में लिखा जावेगा।

———

साधनपाद

—❀—

"तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः" ॥१॥

तपः=द्वन्द्वों का सहन करना, सरदी, गरमी, क्षुधा, पिपासा, सुख, दुःख, तथा रागद्वेषादि पर विजय प्राप्त करना।

स्वाध्याय=धर्म शास्त्रों का पठन-पाठन तथा अनुशीलन और प्रणव का जाप।

ईश्वर प्रणिधान=सब काम ब्रह्मार्पण करके करना—यह क्रियायोग है।

"समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च" ॥२॥

इस क्रियायोग का फल यह है कि समाधि

की उत्पत्ति होती है और क्लेश (जिनका अगले सूत्र में वर्णन है) सूक्ष्म होते हैं।

"अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥३॥

वे क्लेश पांच हैं:—

अविद्या=अज्ञानता, मिथ्याज्ञान (Nescience)

अस्मिता=अहंकार (Egoism)

राग=अनुचित स्नेह या मोह (Attachment)

द्वेष=अनुचित घृणा (Aversion)

अभिनिवेश=मृत्यु का भय, या मैं कभी न मरूँ ऐसा आग्रह करना अभिनिवेश कहलाता है। (Clinging to life)

"अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनु विच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥

अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेशादि क्लेशों की उत्पत्ति की भूमि अविद्या है। वे क्लेश

चाहे सुप्तावस्था में हों या उनके काम करने की शक्ति क्षीण हो चुकी हो; चाहे वे कभी २ उठने वाले हों और चाहे वे उग्ररूप में प्रगट हुए हों। इन चारों की उत्पत्ति की भूमि अविद्या है अर्थात् सब क्लेशों की जड़ अविद्या है।

अब अविद्या का लक्षण करते हैं।

"अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचि सुखात्मख्यातिरविद्या ॥५॥

अनित्य, अपवित्र, दुःख और अनात्मा में क्रमशः नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा की प्रतीति अविद्या है।

"दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता" ॥६॥

द्रष्टृ शक्ति अर्थात् आत्मा, दर्शनशक्ति अर्थात् बुद्धि। आत्मा और बुद्धि का एक सा रूप होना अस्मिता है। जो बुद्धि के धर्म हैं, उन्हें आत्मा के धर्म समझ लेना अस्मिता है।

"सुखानुशयी रागः" ॥७॥

सुख होने के पीछे, उस वस्तु में रही हुई वासना का नाम राग है।

"दुःखानुशयी द्वेषः" ॥८॥

दुःख हो जाने के पीछे, उस वस्तु में रही हुई वासना का नाम द्वेष है।

"स्वरसवाही विदुषोऽपितथारुढोऽभि-निवेशः" ॥९॥

मृत्यु का भय सब प्राणियों में स्वभावतः विद्यमान है और विद्वान् पण्डितों पर भी उसी तरह सवार है—उसे अभिनिवेश कहते हैं। मृत्यु का भय तथा जीवन की इच्छा विद्वान् से विद्वान् में तथा साधारण प्राणिमात्र में भी एक जैसी है।

"ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः" ॥१०॥

उपरोक्त पांच प्रकार के क्लेश क्रियायोग से सूक्ष्म किये जावें। जब वे सूक्ष्म हो जावें, तब

वे क्लेश (प्रतिप्रसव) अपने कारण में लौटा देने से अथवा लीन कर देने से सर्वथा छोड़े जा सकते हैं ।

"ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः" ॥११॥

उन (क्लेशों) की वृत्तियां ध्यान द्वारा हटाई जा सकती हैं । जब वे क्लेश स्थूल अवस्था में है तो उनसे छुटकारा पाने का उपाय ध्यान (Meditation) है ।

"क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट-
जन्मवेदनीयः" ॥१२॥

क्लेश क्यों त्यागने योग्य हैं, इसका कारण यह है कि वे (कर्माशय) कर्मों की वासनायें, जिनको इस जन्म में तथा आगे आने वाले जन्मों में नाना प्रकार के सुख दुःख के रूप में भोगना पड़ता है, उनका कारण अथवा जड़ हैं ।

"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः"

॥१३॥

कर्माशय की जड़ क्लेश हैं जब तक वह जड़ विद्यमान है, तब तक उस कर्माशयरूपी वृक्ष को फल लगाते हैं। वे फल हैं—जाति, आयु और भोग। जब जड़ ही काट दी जावे तब स्वयं ही फल लगने बन्द हो जायेंगे, अतः क्लेशों का त्यागना परमावश्यक है।

"ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्" ॥ १४ ॥

वे जाति आयु और भोग सुख और दुःख फल वाले हैं। क्योंकि जो पुण्य कर्म हैं वे सुख देने वाले हैं और जो पाप कर्म हैं वे दुख के देने वाले हैं।

"परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति-विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः"
॥१५॥

वैराग्य प्राप्त करने वाले विवेकी पुरुष के लिये सब कुछ दुःखमय प्रतीत होता है। क्योंकि जिन वस्तुओं में लोग सुख समझते हैं, वे परिणाम में वस्तुतः दुःख देने वाली हैं। और जो दुःख हैं वे तापरूप हैं ही। इन दोनों के संस्कारों का पड़ते जाना और भी दुःख है तथा सूक्ष्म अवस्था में पहुंचने पर सब वस्तुओं के बनाने वाले सत्व, रजस् और तमस्—इन तीन गुणों के भी परस्पर विरोधी होने के कारण संसार की प्रत्येक वस्तु विवेकी पुरुष के लिये दुःखमय है।

"हेयं दुःखमनागतम्" ॥१६॥

जो दुःख व्यतीत हो चुका है, उसका चिन्तन करना व्यर्थ है। जो दुःख वर्तमान समय में हो

रहा है, वह भी क्षण में भूतकाल में परिवर्तित हो जावेगा। इसलिये जो दुःख अभी नहीं आया और आगे आने वाला है, उसे त्यागना चाहिये।

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः" ॥१७॥

हेय (अनागत दुःख) का कारण द्रष्टा (आत्मा) और दृश्य (प्रकृति) का परस्पर संयोग है। मन बुद्धि भी प्रकृति है। जब आत्मा का मन तथा बुद्धि से संयोग हो जाता है और वह उनके साथ एकरूपता का अनुभव करता है तभी दुःख का भान होता है। मन तथा बुद्धि के कार्यों को आत्मा अपने कार्य समझ उनमें लिप्त होता है, तभी वह सुख दुःख का भोक्ता कहलाता है। यह संयोग ही सब दुःखों का कारण है।

"प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्" ॥१८॥

अब दृश्य (प्रकृति) का लक्षण करते हैं—

प्रकृति वह है, जिसमें सत्व, रज, तम तीनों गुण स्वभावतः ही विद्यमान हैं, जिसका स्वरूप पञ्च-महाभूत और इन्द्रियां हैं और जिसका प्रयोजन भोग और मोक्ष दिलाना है।

"विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि" ॥१६॥

गुण अर्थात् सत्व, रज तथा तमोमयी प्रकृति की चार अवस्थायें हैं—

विशेष=पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, और तेज तथा ग्यारह इन्द्रियां (पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और ११वां मन)

अविशेष=शब्द, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श—ये पांच तन्मात्राएं और छठा अहंकार।

लिङ्गमात्र=महत्तत्व, अर्थात् व्यापकबुद्धि

अलिङ्गमात्र=मूल प्रकृति (गुणों की साम्यावस्था)

"द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानु-
पश्यः" ॥२०॥

अब आत्मा का लक्षण कहते हैं—

आत्मा दृशिमात्र है; Intelligence—देखने की शक्ति मात्र है और शुद्ध है—शुद्ध होता हुआ भी वृत्तियों के पीछे देखने वाला है। The Seer is intelligence and pure. The Atma sees through the colouring of the intellect.

"तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा" ॥२१॥

यह सारा दृश्य (प्रकृति) उस आत्मा के अपवर्ग के लिये ही है। जब अपवर्ग प्राप्त हो जाता है, तब वह इस दृश्य को नहीं देखता।

"कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्य
साधारणत्वात्" ॥२२॥

यद्यपि दृश्य उस आत्मा के लिये नष्ट हो गया

है, जो कि मुक्त है, परन्तु वह दूसरे के लिये नष्ट नहीं हुआ है; क्योंकि वह सबका साझा है।

"स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धि-

हेतुः संयोगः" ॥२३॥

दृश्य तथा द्रष्टा की शक्तियों के स्वरूप को प्राप्त करने के प्रयोजन से ही इनका परस्पर संयोग बना हुआ है।

स्व=(धन) दृश्य, प्रकृति

स्वामी=द्रष्टा, आत्मा

"तस्य हेतुरविद्या" ॥२४॥

इस संयोग का हेतु अविद्या है।

"तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः

कैवल्यम्" ॥२५॥

उस अविद्या के हट जाने से संयोग का अभाव हो जायेगा, इसे ही (हान) दुःखों का

छोड़ना कहते हैं। तभी द्रष्टा को कैवल्य (मुक्ति) प्राप्त हो जावेगा। सारांश यह है कि द्रष्टा का दृश्य के साथ अविद्या के कारण ऐसा संयोग हुआ है कि द्रष्टा अपने स्वरूप को भूल गया है और दृश्य की क्रियाओं और अवस्थाओं को अपनी अवस्था समझने लगा है। जब यह अविद्या हट जावेगी तब संयोग भी हट जावेगा। संयोग का हट जाना ही दुःखों का छूटना है और तब द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जायेगा। अपने स्वरूप में स्थिति ही कैवल्य है।

इस हान की प्राप्ति का उपाय बतलाते हैं—

"विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः" ॥२६॥

निर्मल विवेकज्ञान हान का उपाय है।

अविप्लव=डोलने से रहित

"तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा" ॥२७॥

उस विवेकी पुरुष की प्रज्ञा (Intuitive in-

sight) सात प्रकार की सबसे ऊंची अवस्था वाली होती है।

वे सात प्रकार निम्न हैं—

१. जो कुछ जानना था, अब जान लिया, अब कुछ जानना शेष नहीं रहा।

२. जो दूर करना था, वह दूर कर लिया।

३. जो साक्षात् करना था, वह कर लिया।

४. जो बनाना था, वह बना लिया।

५. चित्त का अब मुझ पर कोई अधिकार नहीं रहा।

६. गुण (सत्व, रज और तम) अपने कारण में लय हो गये हैं। अब इनकी पुनः उत्पत्ति नहीं होगी।

७. द्रष्टा का साक्षात्कार अब हो चुका। अब शेष कुछ नहीं रहा—यही कैवल्य है।

"योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञान-
दीप्तिराविवेकख्यातेः" ॥२८॥

योग के अङ्गों के अनुष्ठान करने से अशुद्धि का क्षय होगा और अशुद्धि के क्षय होने से ज्ञान की अग्नि प्रज्वलित होगी और जबतक विवेक ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता तबतक वह ज्ञान की ज्योति बढ़ती जावेगी।

"यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार
धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि" ॥२९॥

योग के निम्न आठ अङ्ग हैं—

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

"अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या-
परिग्रहा यमाः" ॥३०॥

अहिंसा=प्राणिमात्र के साथ प्रेम। किसीको पीड़ा न देना।

सत्य=मन, वचन और कर्म का एक होना।

अस्तेय=चोरी न करना।

ब्रह्मचर्य=विषयासक्त न होना। इन्द्रियनिग्रह।

अपरिग्रह=(१) स्वावलम्बन (२) किसी पर अपना स्वत्व न जमाना। (३) किसी पर आश्रित न रहना।

"जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्व भौमा महाव्रतम्" ॥३१॥

(गत सूत्र में बतलाये हुए यम) ये सार्वभौम महाव्रत कहलाते हैं जब इनका पालन जाति, देश, काल और समय से सीमित न हो।

"शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि नियमाः" ॥३२॥

शौच=अन्दर तथा बाहर की सफाई।

सन्तोष=जो कुछ अपने पास है उस पर सन्तुष्ट रहना। दूसरों का ऐश्वर्य देखकर ईर्ष्या न करना।

तपः=सहनशील होना। द्वन्द्वों का सहन।

स्वाध्याय=शास्त्रों का पठन-पाठन और अनुशीलन तथा प्रणव का जाप।

ईश्वर प्रणिधान=सब कर्म ब्रह्मर्पण होकर करना। ये नियम हैं।

"वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्" ॥३३॥

वितर्कों की बाधा होने पर उनके विरोधी गुणों का चिन्तन करना चाहिये। यम नियमों के विरुद्ध जो अधर्म हैं, उन्हें वितर्क कहते हैं। यथा यमों के विरुद्ध हिंसा, झूठ, चोरी विषयासक्ति तथा परिग्रह है। जब ये सतावें तब इनके प्रतिपक्ष (विरोधी गुणों) का चिन्तन करना चाहिये। जैसे बुद्धने कहा है—"A man should return love for hatred, should forgive one who

harms him, should do good even if evil is done to him."

"वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्" ॥३४॥

यम नियमों के विरोधी जो हिंसादि वितर्क हैं, वे तीन भेद वाले हैं। वे स्वयं किये जाते हैं। दूसरों से कराये जाते हैं और जब दूसरे करते हैं, तब उनका समर्थन किया जाता है। उनके कारण लोभ, मोह और क्रोध उत्पन्न होते हैं। वे वितर्क कभी नरम अवस्था में होते हैं, कभी दरम्यानी हालत में रहते हैं और कभी बड़े तीव्र हो जाते हैं। इनका फल अनन्त दुःख और अज्ञान है। इस प्रकार प्रतिपक्ष की भावना करे।

"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर-
त्यागः" ॥३५॥

अहिंसाव्रत के दृढ़ हो जाने पर उसके निकट वैर का त्याग हो जाता है। अर्थात् वह स्वयं किसी से द्वेष नहीं करता है और जो उसके निकट रहते हैं, वे भी वैरभाव को त्याग देते हैं।

"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्"
॥३६॥

सत्यव्रत के दृढ़ हो जाने पर क्रिया और फल उसके आश्रित हो जाते हैं अर्थात् वह जो कुछ कहता है वह सब पूरा हो जाता है।

"अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्"
॥३७॥

अस्तेय (चोरी न करना) व्रत के दृढ़ होजाने पर सब रत्न उसके पास उपस्थित हो जाते हैं। अर्थात् सब लोग उस पर इतना विश्वास करते

हैं कि अपने धन-धान्य को उसके पास बिना किसी लिखित साक्षी के भी सुरक्षित समझते हैं।

"ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः" ॥३८॥

ब्रह्मचर्य व्रत के दृढ़ हो जाने पर वीर्यवान् हो जाता है। जो कुछ वह करना चाहता है, वह कर लेता है। वह समर्थ होता है।

"अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः" ॥३९॥

अपरिग्रह व्रत के दृढ़ हो जाने पर अपने गुजरे हुए जीवनों की याद हो जाती है। मैं पूर्व जन्म में कौन था और कैसे था यह भूला हुआ स्मरण आ जाता है।

"शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः" ॥४०॥

शौच से अपने अङ्गों में घृणा और दूसरों से असंसर्ग का भाव पैदा होता है।

"सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजया-
त्मदर्शनयोग्यत्वानि च" ॥४१॥

अन्दर की शुद्धि से अन्तःकरण शुद्ध होता है, मन स्वच्छ होता है, एकाग्रता प्राप्त होती है, इन्द्रियां वश में आती हैं और आत्मदर्शन की योग्यता प्राप्त होती है।

"सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः" ॥४२॥

सन्तोष से उत्तम से उत्तम सुख का लाभ होता है।

"कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः" ॥४३॥

तप से अशुद्धि के क्षय से शरीर और इन्द्रियों का बल बढ़ता है और वे नीरोग होती हैं।

"स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः"
॥४४॥

स्वाध्याय से इष्ट देवता का (Intended object) साक्षात्कार होता है।

"समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्" ॥४५॥

ईश्वर के प्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है।

"स्थिरसुखमासनम्" ॥४६॥

आसन वह है, जिसमें मनुष्य स्थिरतापूर्वक बैठ सके और सुख पूर्वक बैठ सके।

"प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्" ॥४७॥

वही आसन स्थिर सुख वाला कहलाता है, जिसमें प्रयत्न की शिथिलता पाई जावे और चित्त को अनन्त में मग्न किया जा सके।

"ततो द्वन्द्वानभिघातः" ॥४८॥

जब आसन सिद्ध हो जाता है तो उस समय योगी को द्वन्द्वों की चोट नहीं लगती। अर्थात् उसे सरदी गरमी, भूख प्यास, सुख दुःख कुछ नहीं प्रतीत होता।

"तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः" ॥४६॥

आसन के दृढ़ हो जाने पर श्वास प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है।

"बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्ति र्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः" ॥५०॥

वह प्राणायाम तीन प्रकार का है—

बाह्यवृत्ति=रेचक प्राणायाम=जब सांस को बाहर ही रोक दिया जावे।

आभ्यन्तरवृत्ति=पूरक प्राणायाम=जब सांस को अन्दर खैंचकर अन्दर ही उसे रोक लिया जावे।

स्तम्भवृत्ति=कुम्भक प्राणायाम=जिसमें न अन्दर खैंचकर और न बाहर फैंककर जहां का तहां प्राण को रोका जावे।

यह तीन प्रकार का प्राणायाम देश, काल और संख्या से हल्का और लम्बा देखा जाता है।

"बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥५१॥

चतुर्थ प्रकार का प्राणायाम वह है, जिसमें बाह्य और आभ्यन्तर प्राणायाम को उलांघ दिया जाता है, अर्थात् रेचक और पूरक प्राणायाम करने की आवश्यकता नहीं रहती—इसे केवल कुम्भक प्राणायाम कहते हैं।

"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्" ॥५२॥

प्राणायाम का फल यह है कि प्रकाश के ऊपर जो अविद्या आदि का आवरण छाया हुआ है, वह सर्वथा नष्ट होजाता है।

"धारणासु च योग्यता मनसः ॥५३॥

धारणा के अभ्यास से मन की योग्यता पैदा हो जाती है।

"स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥५४॥

इन्द्रियों का जब अपने विषय में सम्बन्ध नहीं रहता और चित्त के अन्तर्मुख हो जाने से वह भी अन्तर्मुख हो जाती हैं। अर्थात् इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप की नकल सा बन जाना ही प्रत्याहार है।

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥५५॥

प्रत्याहार से इन्द्रियों पर मनुष्य का पूरा पूरा विजय हो जाता है!

विभूतिपाद

वि
भू
ति
पा
द

इस पाद में पहिले धारणा, ध्यान तथा समाधि का लक्षण किया है।

किसी स्थानविशेष पर चित्त को बांधने का नाम धारणा है। उस धारणा में यदि ज्ञान का प्रवाह निरन्तर एकरस बना रहे तो उसका नाम ध्यान है। और जब ध्याता अपने स्वरूप को भूल जावे और केवल ध्येयमात्र की ही भासना हो, उसे समाधि कहते हैं। इन तीनों का एक ही विषय में जो जुटना है उसका नाम संयम है। यह तीनों साधन अन्तरङ्ग हैं। और पिछले पाद के बतलाये हुए जो

५ अङ्ग हैं (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार) वह इनके सामने बहिरङ्ग हैं। परन्तु यह (धारणा, ध्यान, समाधि) भी निर्बीज समाधि के सम्मुख बहिरङ्ग हैं। जब मनुष्य समाहित होता है तो चित्त में कई परिणाम होते हैं। वह परिणाम निम्न हैं—

निरोध परिणाम, समाधि परिणाम, और एकाग्रता परिणाम।

निरोध परिणाम उस समय होता है जब चित्त की क्षिप्त, विक्षिप्त तथा मूढ़ अवस्थायें सर्वथा दब जाती हैं और निरोध के संस्कार उदय होते हैं।

समाधि परिणाम उस समय होता है जब चित्त इधर उधर नहीं भटकता है और एकाग्र हो जाता है। एकाग्रता का परिणाम उस समय समझना चाहिए जब व्यतीत हुआ समय वर्त्तमान के तुल्य प्रतीत होता है। जैसे मैं एक पुस्तक दो घण्टे से पढ़ रहा हूँ मेरा चित्त उसमें इतना निमग्न

होगया है कि दो घण्टे व्यतीत हुए कुछ भी मालूम नहीं होते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि मानों मैंने पुस्तक को अभी पढ़ना आरम्भ किया है।

जिस प्रकार चित्त में यह परिणाम होते हैं उसी प्रकार प्रकृति के पदार्थों में तथा इन्द्रियों में भी परिणाम होते हैं। उन परिणामों को

१ धर्म परिणाम

२ लक्षण परिणाम

३ अवस्था परिणाम

के नामों से व्यक्त किया जाता है। मिट्टी से घड़ा बना यह मिट्टी का धर्म परिणाम है। जिस मिट्टीसे मैंने पहिले घड़ा बनाया था अब उसी घड़े को तोड़ कर पुनः उसी से मैंने एक प्याला बना लिया, यह उस मिट्टी का लक्षण परिणाम हुआ। पहिले घड़ा नया था तो उसमें पानी ठंडा रहता था। अब घड़ा पुराना होगया इसलिए अब उसमें वैसी ठंडक नहीं रही। इसे अवस्था परिणाम कहते हैं।

इन परिणामों में संयम करने से कई प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं। जो इस विभूतिपाद में वर्णित हैं। साधारण जन इन सिद्धियों को ही योग समझते हैं। यह उनकी भूल है। सिद्धियां योग के रास्ते में रुकावटें हैं जो लोग इन सिद्धियों में फंस जाते हैं वह योग के ध्येय (आत्म साक्षात्कार) तक नहीं पहुँच सकते। इसीलिए पतिञ्जलि मुनि लिखते हैं "ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः" सिद्धियों का महत्व उतना ही है जितना सर्कस में खेल करने वाले खिलाड़ियों का है। या जिम्नास्टिक करने वाले एक व्यक्ति का है या मदारी का है।

क्या हम सर्कस में हाथी को एक कुर्सी पर बैठे हुए सूंड के सहारे चाय पीते हुए देख कर चकित नहीं होते? क्या हम कुत्ते को चीते के साथ युद्ध करते हुए देखकर विस्मित नहीं होजाते? एक बच्चे को हम जब किसी प्रदर्शनी में २०० फुट ऊंचाई

से आग में छलांग लगाते हुए देखते हैं तो हमारी हैरानी की सीमा नहीं रहती। जब विलायत में खुदावख़्श नामक एक साधु ने वड़े वड़े वैज्ञानिकों की सभा में नंगे पांव २०० गज लम्बे जलते हुए कोयले के ढेर पर चलकर दिखला दिया तो सभा में उपस्थित विद्वानों के आश्चर्य की सीमा न रही।

जैसे उपरोक्त घटनायें हमें हैरान करने वाली हैं ठीक उसी तरह योगियों की सिद्धियां हमें चकित करती हैं।

हरिदास नामक महात्मा राजा रणजीतसिंह के जमाने में एक मास तक बिना हवा, पानी, भोजन के जमीन में गड़े रहे और उस जमीन पर हल चला दिया गया। एक मास के पश्चात् जब वह वाहर निकले तब वह वैसे ही स्वस्थ निकले जैसे पहिले थे। इसी प्रकार आज कल के जमाने में कई साधु ऐसी क्रियायें करते हैं और इसे अपने निर्वाह का साधन वनाया हुआ है। परन्तु यह

योग नहीं है। इसीलिये कोई भी पाठक इन सिद्धियों में न फंसे अन्यथा उसका मार्ग रुक जावेगा और वह अपने ध्येय को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

१. धर्मलक्षण, अवस्था परिणामों में संयम करने से योगी को भूत भविष्यत् का ज्ञान हो जाता है। संसार में भी सामान्यतया यह देखा जाता है कि किसी पदार्थ के गुण, अवगुण, विशेषताएं तथा अवस्थाएं समझने से उसके विषय में साधारण पुरुष भी उसके भूत भविष्यत् की बाबत कुछ कह सकता है। प्रत्युत योगी का ज्ञान पूर्ण और अत्युत्कृष्ट होता है।

२. अपने संस्कारों पर संयम करने से योगी को अपने पूर्व जन्म का ज्ञान होता है।

३. किसी के शरीर की आकृतिपर संयम करने से उसके चित्त का ज्ञान भी योगी को हो जाता है सामान्यतया जो Facial expression (मुखाकृति)

के विज्ञान को जानते हैं वह भी ऐसा कर सकते हैं।

४. "मैत्र्यादिषु बलानि" मैत्री आदि में संयम करने से बल प्राप्त हो जाता है, सामान्यतया जो मनुष्य दूसरों के साथ प्रेम का व्यवहार करता है वह प्रेमपात्र बन जाता है। और जो घृणा करता है दूसरे भी उससे घृणा करेंगे। योगी भी Auto suggestion द्वारा अपने प्रेम प्रवाह पर इतना संयम करता है कि वह प्रेममय दिखलाई देता है कोई मनुष्य उससे घृणा नहीं करता। इसलिये उसका बल या प्रभाव बहुत अधिक हो जाता है।"बलेषु हस्तिबलादीनि" यदि Auto suggestion द्वारा योगी अपने शारीरिक बल पर संयम करता है तो उसे हाथी आदि के बल प्राप्त हो जाते हैं। जो मनुष्य हर समय यही Suggestion देता रहता है कि मैं पूर्णरूप से बलवान् हूँ, मैं पूर्णरूप से स्वस्थ हूँ, मैं कभी रोगी नहीं हो सकता, वह

वस्तुतः सर्वथा स्वस्थ रहता है, जो हमेशा नब्ज अपने हाथ में पकड़े हुए है और हर समय कोई न कोई शारीरिक शिकायत करता रहता है· वह हमेशा के लिए रोगी रहता है।

६. "भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्" सूर्य में संयम करने से योगी को सारे भुवनों का ज्ञान हो जाता है—तात्पर्य यह है कि जो ज्ञान Solar system के अध्ययन से एक वैज्ञानिक को होता है वह योगी को अपने आन्तरिक संयम से प्राप्त होता है।

७. "चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ध्रुवे तद्गति ज्ञानम्" चन्द्र में संयम करने से नक्षत्रों की स्थिति का ज्ञान योगी को हो जाता है। और ध्रुव में संयम करने से उन नक्षत्रों की गति का ज्ञान योगी प्राप्त कर लेता है।

यह सब ज्ञान ज्योतिष शास्त्र (Astronomy)

द्वारा वैज्ञानिक भी प्राप्त करता है प्रत्युत योगी संयम द्वारा यह ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

८. "नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्" नाभिचक्र में संयम करने से शरीर की बनावट का ज्ञान होता है।

९. कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः" कण्ठ कूप में संयम करने से योगी को क्षुधा और पिपासा की निवृत्ति हो जाती है।

१०. कण्ठकूप के नीचे वक्षस्थल में कछुए के आकार की एक नाड़ी है। इसमें संयम करने से योगी का चित्त स्थिर हो जाता है।

११. मूर्द्धा की ज्योति में संयम करने से योगी को सिद्धों का दर्शन होता है। "मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्"।

१२. "प्रातिभाद् वा सर्वम्" (Intuitive insight) प्रज्ञा द्वारा योगी प्रत्येक वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

१३. "हृदये चित्तसंवित्" हृदय कमल में संयम करने से चित्त का ज्ञान हो जाता है।

१४. उदान प्राण में संयम करने से योगी जल, कीचड़ और कांटे आदि में नहीं फँसता और इच्छानुसार उसकी मृत्यु होती है।

१५ समान प्राण के जीतने से योगी तेजस्वी हो जाता है।

१६. ५ महाभूतों के जीतने से योगी में अणि-मादि सिद्धियों का प्रादुर्भाव होता है। देह की सम्पदा प्राप्त होती है।

अणिमादि सिद्धियां निम्न हैं—

अणिमा=देह का सूक्ष्म कर लेना
लघिमा=शरीर का हलका कर लेना
महिमा=शरीर को बढ़ाना
प्राप्ति=जिस पदार्थ की इच्छा हो उसका प्राप्त होना।

प्राकाम्य = विना रुकावट के इच्छा का पूरा होना

वशित्व = भौतिक पदार्थ अपने हो सकना।

ईशितृत्व = शरीर और अन्तःकरणों का अधिकार में होना।

यत्रकामावसायित्व = प्रत्येक संकल्प का पूरा हो जाना

काय सम्पत् = शरीर का वल और सौन्दर्यादि से युक्त होना, वज्र के तुल्य शरीर का दृढ़ होना।

तद्धर्मानभिवात = पञ्च महाभूतों के कार्य विघ्नकारक नहीं होते

इस प्रकार अनेक सिद्धियों का वर्णन इस पाद में है—जिनमें से कुछ तो भौतिक विज्ञान द्वारा भी सत्य सिद्ध हो चुकी हैं और कुछ ऐसी हैं जो अवतक मानुपी बुद्धि के वाहर हैं।

परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि यह चमत्कार या सिद्धियां ही योग नहीं हैं—योग आत्म साक्षात्कार का नाम है। आत्मसाक्षात्कार तब होगा जब चित्त की सब वृत्तियां रुक जायेंगी।

—

विभूतिपाद

अब धारणा का लक्षण करते हैं—

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा" ॥१॥

चित्त का किसी स्थान पर (नाभिचक्र, नासिकाग्र, जिह्वाग्र, हृदयकमल, मूर्धा में) बांधना धारणा है। ध्यान का लक्षण करते हैं—

"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" ॥२॥

जिसमें चित्त को धारण किया है, उस प्रदेश में ज्ञान का प्रवाह निरन्तर एकरस बना रहे, वही ध्यान है—अर्थात् किसी बाह्य तथा आन्तरिक पदार्थ पर चित्त को सर्वथा एकाग्र करना ध्यान कहलाता है। अब समाधि का लक्षण करते हैं:—

"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः" ॥३॥

समाधि वह है जिसमें ध्याता का स्वरूप तो लुप्त हो जाता है, केवल उसमें अर्थमात्र (ध्येयमात्र) भासता है।

अब संयम का लक्षण करते हैं:—

"त्रयमेकत्र संयमः" ॥४॥

जब धारणा, ध्यान, समाधि एक ही विषय में हों, तब उसे संयम कहते हैं।

"तज्जयात् प्रज्ञालोकः" ॥५॥

संयम के दृढ़ हो जाने पर प्रज्ञा (Intuitive insight) का प्रकाश होता है।

"तस्य भूमिषु विनियोगः" ॥६॥

उस संयम का विनियोग (application) क्रमशः होना चाहिये। अर्थात् पहले स्थूल विषयों

में चित्त लगाया जावे, फिर उससे कम स्थूल, पुनः सूक्ष्म में, सूक्ष्मतर में, और सूक्ष्मतम में संयम किया जावे।

"त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः" ॥७॥

योग के आठ अङ्ग हैं—पहले पांच अङ्गों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार) की अपेक्षा पिछले तीन अङ्ग (धारणा, ध्यान, समाधि) अन्तरङ्ग साधन कहाते हैं।

"तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य" ॥८॥

निर्बीज समाधि के सामने तो धारणा, ध्यान, समाधि भी बहिरङ्ग साधन कहाते हैं।

निरोध परिणाम का लक्षण:—

"व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोध परिणामः" ॥९॥

जब चित्त निरुद्धावस्था में है, उस समय

व्युत्थान (क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ वृत्ति) के संस्कार दब जाते हैं और निरोध के संस्कार उदय होजाते हैं । उन निरोध के संस्कारों में चित्त का अनुगत होना, निरोध परिणाम कहलाता है । सूत्रकार के कहने का यह तात्पर्य प्रतीत होता है कि निरुद्धावस्था में अर्थात् असम्प्रज्ञात अवस्था में वृत्तियां तो सब क्षीण हो जाती हैं परन्तु निरुद्धावस्था के संस्कार शेष रह जाते हैं। वही चित्त का निरोध परिणाम है।

"तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात्"
॥१०॥

निरोध संस्कार से चित्त का प्रवाह शान्त रूप से बहने लग जाता है। उपरोक्त दोनों सूत्र असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था को बतलाने वाले थे। अब सम्प्रज्ञात समाधि में चित्त का परिणाम दिखलाते हैं:—

"सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः" ॥११॥

जब चित्त की सर्वार्थता (विक्षिप्तता) नष्ट हो जाती है और एकाग्रता उदय हो जाती है, उसे चित्त का समाधि परिणाम कहते हैं।

"ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः" ॥१२॥

चित्त को एकाग्र परिणाम वाला उस समय समझा जाता है, जब शान्त (जो व्यतीत हो चुकी) और उदय हुई २ वृत्ति एक जैसी प्रतीत होती हैं। यथा किसी पुस्तक को पढ़ते समय यदि हम सर्वथा उसमें निमग्न हो जावें तो एक घन्टा या दो घन्टे व्यतीत होने के पश्चात् भी हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उसको अभी आरम्भ किया था। वह गुजरा हुआ समय वर्तमान समय प्रतीत होता है। इसको एकाग्रता परिणाम कहते हैं।

"एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्था-
परिणामा व्याख्याताः" ॥१३॥

उपरोक्त सूत्रों में चित्त के परिणाम बतलाये हैं। वे हैं:—

निरोध परिणाम } (असम्प्रज्ञात समाधि में)
समाधि परिणाम
एकाग्रता परिणाम } (सम्प्रज्ञात समाधि में)

इसी प्रकार स्थूल प्रकृति में तथा इन्द्रियों में भी परिणाम है (तबदीली होती है) उन परिणामों के नाम निम्न हैं:—

धर्म परिणाम, लक्षणपरिणाम, और अवस्था परिणाम।

मिट्टी से घड़ा बना या सोने से एक हार बनाया गया—यह धर्म परिणाम है। मिट्टी में कई आकार हैं, जो लुप्त हैं। जिस समय जो आकार प्रकट होता है, तो दूसरे आकार उसमें लुप्ता-

वस्था में विद्यमान हैं। वह प्रकट आकार उस समय उस वस्तु का लक्षण परिणाम है। यह घड़ा कच्चा था और अब पक गया है। यह हार सुन्दर नहीं था, अब मल दूर हो जाने से सुन्दर हो गया है। यह अवस्था परिणाम है।

"शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती-धर्मी" ॥१४॥

धर्मी वह द्रव्य है, जिसमें से कई आकार बन चुके और कई वर्तमान काल में बन रहे हैं तथा भविष्यत काल में बनेंगे। ऐसे आकारों में जो अनुगत है, उसे धर्मी समझो।

जैसे सोना एक द्रव्य है, उससे मैंने भूतकाल में गले का हार तय्यार किया। अब पुनः उस हार को तुड़वा कर मैंने वर्तमान काल में, उससे हाथ का गहना तय्यार करवाया। भविष्य में शायद उसी द्रव्य से कोई और गहना तय्यार करवाया

जायेगा। इन सब आकारों में द्रव्य सोना एक ही है। उस द्रव्य को धर्मी कहेंगे।

"क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः" ॥१५॥

क्रम या भेद परिणाम के भेद में हेतु है।

(The succession of changes is the cause of the manifold evolution)

यहां से आगे सिद्धियों का वर्णन है—

"परिणामत्रयसंयमात् अतीतानागत-ज्ञानम्" ॥१६॥

धर्म लक्षण तथा अवस्था परिणामों में संयम करने से भूत तथा भविष्यत् का ज्ञान योगी को होता है।

"शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् सङ्करस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम्" ॥१७॥

शब्द, अर्थ तथा ज्ञान साधारण मनुष्य के

लिये मिले हुए प्रतीत होते हैं। योगी उनमें विविक्त रूप से संयम करने से सब प्राणियों की आवाजों (शब्दों) का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

"संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजाति-
ज्ञानम्" ॥१८॥

संस्कारों के साक्षात करने से पूर्व जन्म का ज्ञान होता है।

"प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्" ॥१९॥

ज्ञान में संयम करने से दूसरे के चित्त का ज्ञान होता है।

"न च तत् सालम्बनं तस्याविषयी-
भूतत्वात्" ॥२०॥

चित्त के विषयों का साक्षात्कार नहीं होना, क्योंकि वह संयम का विषय नहीं है। चित्त राग वाला है या वीत राग है, इतना ही साक्षात्कार

होता है। चित्त किस राग वाला है, यह संयम का विषय नहीं।

"कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षु-
प्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम्" ॥२१॥

शरीर के रूप में संयम करने से उसकी ग्राह्यशक्ति के थमने पर नेत्र का प्रकाश रुक जाता है और योगी सामने खड़ा हुआ भी छिपा हुआ प्रतीत होता है तथा दिखलाई नहीं देता।

"सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमाद-
परान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा" ॥२२॥

सोपक्रम और निरुपक्रम ये दो प्रकार के कर्म हैं। इन दो प्रकार के कर्मों में संयम करने से योगी को मृत्यु का ज्ञान हो जाता है। अथवा अरिष्टों (Bad omens) के जानने से मृत्यु का ज्ञान हो जाता है।

सोपक्रम वे कर्म हैं जो कर्म अपना काम कर रहे हैं, कुछ फल दे चुके हैं और कुछ शेष हैं।

निरुपक्रम कर्म वे हैं—जिन्होंने अपना काम आरम्भ नहीं किया। उन दोनों प्रकार के कर्मों में संयम करने से योगी मृत्यु का ज्ञान उपलब्ध कर लेता है।

"मैत्र्यादिषु बलानि" ॥२३॥

मैत्री आदि के संयम करने से बल प्राप्त होता है। प्रथम पाद सूत्र २३ में "मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणाम्" सूत्र की तरफ इशारा है। उसमें संयम करने से योगी को विशेष बल प्राप्त होता है।

"बलेषु हस्ति बलादीनि" ॥२४॥

बलों में संयम करने से योगी को हाथियों जैसा बल प्राप्त होता है।

"प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहित-
विप्रकृष्टज्ञानम्" ॥२५॥

हृदय कमल की ज्योति पर संयम करने से जो वस्तुएं सूक्ष्म हैं, व्यवधान वाली हैं और दूर हैं, उनका ज्ञान प्राप्त होता है।

"भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्" ॥२६॥

सूर्य में संयम करने से सारे मण्डलों का ज्ञान योगी को होता है।

"चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्" ॥२७॥

चन्द्र में संयम करने से तारों के व्यूह का ज्ञान योगी को होता है।

"ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्" ॥२८॥

ध्रुव में संयम करने से प्रत्येक नक्षत्र की गति का ज्ञान योगी को हो जाता है।

"नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्" ॥२९॥

नाभिचक्र में संयम करने से शरीर के व्यूह (systems) का ज्ञान हो जाता है।

"कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः" ॥३०॥

कण्ठ के कूप में संयम करने से भूख और प्यास की निवृत्ति हो जाती है।

"कूर्मनाड्यां स्थैर्यम्" ॥३१॥

कण्ठकूप के नीचे छाती में जो कछुए की आकार वाली नाड़ी है, उसमें संयम करने से स्थिरता प्राप्त होती है।

"मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्" ॥३२॥

मूर्द्धा की ज्योति में संयम करने से सिद्धों के दर्शन होते हैं।

"प्रातिभाद्वा सर्वम्" ॥३३॥

नैसर्गिक विवेक ज्ञान से योगी सब कुछ जान लेता है।

"हृदये चित्तसंवित्" ॥३४॥

हृदय में संयम करने से चित्त का ज्ञान होता है।

"सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगःपरार्थत्वात् स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम्" ॥३५॥

बुद्धि और पुरुष के संयोग से भोग होता है। जब योगी बुद्धि और पुरुष को पृथक् पृथक् कर केवल पुरुष में संयम करता है, तब उसे अपनी आत्मा का ज्ञान होता है।

"ततःप्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते" ॥३६॥

अपने आत्मा में संयम करने से प्रातिभ, श्रावण वेदना, आदर्श आस्वाद और वार्ता ज्ञान होते हैं।

प्रातिभ=मन की दिव्य शक्ति ।

श्रावण=दिव्य शब्द शक्ति ।

वेदना=दिव्य स्पर्श शक्ति ।

आस्वाद=दिव्य रस शक्ति ।

वार्ता=दिव्य घ्राण शक्ति ।

आदर्श=दिव्य रूप शक्ति ।

सारांश यह है—मन तथा पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ दिव्य शक्ति वाली हो जाती हैं ।

"ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः" ॥३७॥

उपरोक्त सब सिद्धियां व्युत्थान अवस्था में होती हैं । समाधि में ये रुकावटें हैं ।

"बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः" ॥३८॥

जब चित्त के बन्धन का कारण ढीला हो गया

है योगी उस चित्त की सब आन्तरिक क्रियाओं के ज्ञान प्राप्त करने से दूसरे शरीर में प्रवेश कर सकता है।

"उदानजयात् जलपङ्ककण्टकादिष्व-सङ्गोत्क्रान्तिश्च" ॥३९॥

उदान=जो प्राण कण्ठ में रहता हुआ रसादि की ऊर्ध्वगति का हेतु है उस उदान प्राण में संयम करने से योगी पानी में डूब नहीं सकता, कीचड़ तथा कांटे आदि में नहीं फँस सकता और इच्छा-नुसार उसका मरण होता है।

"समानजयाज्ज्वलनम्" ॥४०॥

समान प्राण के जीतने से योगी का शरीर अग्नि की तरह तेजस्वी प्रतीत होता है (समान प्राण वह है जो आहार के रस को अपने अपने स्थान में पहुँचाने का हेतु है)

"श्रोत्राकाशयोःसम्बन्धसंयमात् दिव्य-श्रोत्रम्" ॥४१॥

श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से योगी दिव्य शब्द (शरीर के अन्तर्गत होने वाला घोष) सुनने के योग्य हो जाता है।

"कायाकाशयोःसम्बन्धसंयमाल्लघुतूल-समापत्तेश्चाकाशगमनम्" ॥४२॥

शरीर और आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से और रुई के तुल्य हलका हो जाने की समापत्ति से योगी आकाश में गमन करता है।

"बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः" ॥४३॥

जब मन को शरीर से बाहर कल्पना कर उसकी वृत्ति का ध्यान किया जावे और उसमें संयम किया जावे, उसको महाविदेहा वृत्ति कहते हैं। उस

महाविदेहा वृत्ति में संयम करने के प्रकाश पर जो आवरण है, उसका नाश हो जाता है।

"स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमात् भूतजयः" ॥४४॥

स्थूल=पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, तेज

स्वरूप=पृथ्वी का स्वरूप काठिन्य, जल का स्वरूप गीलापन, तेज का स्वरूप ऊष्णता, वायु का स्वरूप गति और आकाश का स्वरूप न रुकना

सूक्ष्म=पञ्चतन्मात्रा (शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श)

अन्वय=सत्व, रजस्, और तमस्,

अर्थवत्त्व=भोग और अपवर्ग जिनका प्रयोजन है।

इन सबमें क्रमशः संयम करने से इन पांच महाभूतों का जय होता है। इनपर अधिकार हो जाता है।

"ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्त-द्धर्मानभिघातश्च" ॥४५॥

इन पञ्च महाभूतों के जीतने से अणिमादि आठ सिद्धियां होती हैं। शरीर की सम्पदा प्राप्त होती है तथा इन पञ्च महाभूतों के धर्म योगी को किसी प्रकार भी हानि नहीं पहुंचाते। (अणिमादि का भावार्थ सारांश में लिख दिया गया है।)

कायसम्पत् किसे कहते हैं ?

'रूप लावण्य बल वज्र संहननत्वानि कायसम्पत्" ॥४६॥

रूप, सौन्दर्य, बल, वज्र की सी बनावट यह योगी के शरीर की सम्पदा है। अथात् योगी का शरीर बड़ा सुन्दर, बलिष्ट और वज्रसमान हो जाता है।

"ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्व-
संयमादिन्द्रियजयः" ॥४७॥

ग्रहण=इन्द्रियों का देखना, सुनना सूंघनादि

स्वरूप=इन्द्रियों की बाहर की बनावट आंख, कान, नाक आदि

अस्मिता=मैं देखता हूं, मैं सुनता हूं

अन्वय=सत्व रजस् और तमस् आदि गुण

अर्थवत्त्व=प्रयोजन, भोग और मोक्ष

इन्द्रियों तथा उनका सामान्यरूप, अहंभाव तथा सत्व रजस् और तमसादि गुण और उनके प्रयोजन पर संयम करने से इन्द्रियों का जय होता है। सारांश यह है—प्रत्येक इन्द्रिय का गुण धर्म तथा कर्तव्य और कारण जान लेने से उस इन्द्रिय की सम्यक्तया असलीयत पता लग जाती है।

"ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च" ॥४८॥

इन्द्रियों के जय से निम्न फल हो जाते हैं—

मनोजवित्व=मन की तरह इन्द्रियां भी अधिक वेग वाली हो जाती हैं।

विकरणभाव=शरीर से स्वतन्त्र इन्द्रियों में काम करने की शक्ति पैदा हो जाती है।

प्रधान जय=सब प्रकृति पर अपना अधिकार हो जाता है। ये तीन सिद्धियां मधुप्रतीका कही जाती हैं।

"सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्व-भावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वञ्च" ॥४९॥

बुद्धि और पुरुष के भेद के ज्ञान से योगी सब भावों का मालिक हो जाता है और सब भावों का ज्ञाता हो जाता है।

"तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्"
॥५०॥

उपरोक्त सिद्धियों में वैराग्य हो जाने से मलों का सर्वथा क्षय हो जाता है। उसे ही मुक्ति अथवा कैवल्य कहते हैं।

"स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात्" ॥५१॥

योग के रास्ते में अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं। योगी उनमें किसी प्रकार का लगाव या अभिमान न करें। अन्यथा अनिष्ट हो जाने की सम्भावना बनी रहेगी। सारांश यह है कि सिद्धियों में फंस जाने से योगी का ध्येय अर्थात् कैवल्य प्राप्त नहीं होगा।

"क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्"
॥५२॥

क्षण तथा उनके क्रम में संयम करने से विवेक ज्ञान होता है।

"जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात् तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः" ॥५३॥

वे वस्तुएँ जिनका भेदज्ञान जाति देश और लक्षण द्वारा नहीं हो सकता, उन वस्तुओं का परस्पर भेद भी विवेकज्ञान द्वारा संयम विधि से जाना जा सकता है।

कुत्ते और बैल में जाति भेद है। एक कुत्ता श्वेत रंग का है और दूसरा काले रंग का है। यह लक्षण भेद है। एक कुत्ता विलायती है और दूसरा भारतीय है। यह देश भेद है।

"तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्" ॥५४॥

विवेकज्ञान वह है, जो ज्ञान पूर्णरूप से स्वतः बिना उपदेश प्राप्त हो जाता है और बिना किसी

क्रम के एक क्षण में प्राप्त हो जाता है। इसे ही विवेकज्ञान कहते हैं।

"सत्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्"

॥५५॥

बुद्धि और पुरुष (आत्मा) की शुद्धि जब समान हो जाती है तब मोक्ष हो जाता है।

कैवल्यपाद

कैवल्य पाद

यह पाद छोटा है, परन्तु परमावश्यक है और कुछ कठिन भी है। इस पाद में सब से पहले यह प्रकट किया गया है कि सिद्धियों के प्राप्त हो जाने से योगी के शरीर में अपूर्व परिवर्तन होते हैं। उन अपूर्व परिवर्तनों के कारण वह योगी चिरकाल तक जीवित रह सकता है। जिस चीज़ को आज कल के वैज्ञानिक सिद्ध कर रहे हैं वह पतञ्जलि मुनि हज़ारों वर्ष पूर्व ही योग दर्शन में लिख गए हैं। प्रोफेसर हेवर का कहना है "कुछ समय के अनन्तर एक ऐसा मनुष्य समुदाय उत्पन्न हो

जावेगा जो एक सहस्र वर्ष तक भी चाहे तो जीवन वृद्धि कर सकेगा। उनका कथन है कि Insulins नामी ओषधि के विज्ञान ने हमारे विचारों में महान् परिवर्तन कर दिया है"। ठीक इसी ही बात को पतञ्जलि मुनि ने योगदर्शन के चतुर्थ पाद में पहले दो तीन सूत्रों में प्रकट किया है। योगाचार्य लिखते हैं कि सिद्धियां कई प्रकार की हैं।

जन्मौषधि मन्त्र तपः समाधिजाः सिद्धयः

कई महात्माओं को जन्म से ही सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। कईयों को ओषधि तथा रसायनादि से सिद्धियां प्राप्त होती हैं। कईयों को स्वाध्याय से, और कईयों को तप से, तथा कईयों को समाधि से सिद्धियां प्राप्त होती हैं। उन सब सिद्धियों का सर्वप्रथम फल शरीर का नीरोग होना, आयु का बढ़ना, और रूपवान्, लावण्ययुक्त तथा वज्र की तरह मजबूत होना है।

"जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्"

प्रकृतियों (सिद्धियों) के शरीर में भर जाने से योगी के शरीर में अपूर्व परिवर्तन होते हैं। परन्तु योगाचार्य आदेश देते हैं कि ओषधि का सेवन, शुद्ध भोजन, तप तथा स्वाध्याय शरीरों के परिवर्तन में कारण न समझे जावें, प्रत्युत उनके विकास में जो रुकावटें हैं, उन्हें दूर करने वाला समझा जावे।

"निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु
ततः क्षेत्रिकवत्"

यदि हम आधुनिक विज्ञान द्वारा शरीर रचना का अध्ययन करें तो हमें ऋषि के वाक्यों पर श्रद्धा अधिक हो जावेगी। माता और पिता के रज और वीर्य के समागम से गर्भ की उत्पत्ति होती है। यह गर्भ आदि में एक ही (Cell) का होता है, और अपनी माता के रक्त से खुराक हासिल करता रहता है। एक सैल (Cell) के फिर दो (Cells) हो जाते हैं, दो के चार, और चार के

आठ, आठ के सोलह, सोलह के बत्तीस, और बत्तीस के छ्यानवे सैल्स हो जाते हैं।

जब छ्यानवे सैल्स का गर्भ हो जाता है, तब वह दो भागों में विभक्त हो जाता है। ऊपर के भाग में चौंसठ सैल्स और निचले भाग में बत्तीस सैल्स होते हैं। उन चौंसठ सैल्स वाले भाग में हमारा दिमाग, हृदय, फेफड़े, पृष्ठ मेरु आदि तय्यार होते हैं और नीचे के भाग वाले सैल्स से मेदा, जिगर, गुर्दे, आन्तें तैयार होते हैं। यह सैल्स करोड़ों और अरबों की संख्या में बढ़ जाते हैं। जब बच्चा पैदा होता है तो उसका देह करोड़ों सैल्स का समूह होता है। इन सैल्स की वृद्धि ही जीवन है और इनका ह्रास ही मृत्यु है। यदि हम इन सैल्स की वृद्धि करते जावें, और उनका ह्रास कम होने देवें, तो हम बहुत वर्षों तक जीवित रह सकते हैं। बचपन और युवावस्था में हमारे शरीर को वृद्धि होती है, उसका कारण

यह है कि उस अवस्था में हमारे शरीर में सैल्स ज्यादा बढ़ते हैं, और नाश कम होते हैं। वृद्धावस्था में हमारी वृद्धि कम होती है क्योंकि उस अवस्था में सैल्स नाश ज्यादा होते हैं, और बढ़ते बहुत कम हैं। डा० इलैक्सस ने एक मनुष्य के मस्तक के सैल्स को निकाल कर अपनी प्रयोगशाला में कई वर्षों से जिन्दा रक्खा हुआ है, और जब वह मुरझा जाते हैं तो उनके आहार में उचित परिवर्तन कर दिया जाता है। वह पुनः ठीक कार्य करने लग जाते हैं। उन्हों ने एक मुर्गी के अण्डे में से उसके बच्चों को उठा लिया और उसके दिल को निकाल अपनी प्रयोगशाला (Laboratory) में रख दिया, वहां वह दिल १२ वर्षों तक लगातार चलता रहा, और उचित आहार से उसका पालन किया गया। जब शरीर से बाहर भी सैल्स (Cells) उचित आहार से जीवित रह सकते हैं, तो क्या वे शरीर के अन्दर जहां उनका उचित

स्थान है जीवित नहीं रह सकते ? यदि हमारा उचित औषध सेवन तथा आहार हो, विचारों में पवित्रता हो तथा संयम का जीवन हो तो हम अपने इन सैल्स को बहुत देर तक जीवित रख सकते हैं । ऋषि पतञ्जलि ने इसी को ही अपने सूत्रों द्वारा स्पष्ट किया है । शरीर का स्वस्थ होना तथा आयु का बढ़ना योग के लिए बहुत आवश्यक है । ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है "जो आचार्य और माता पिता अपनी सन्तानों को प्रथम वय में विद्या और गुण ग्रहण के लिये तपस्वी बनावें वे सन्तान आप ही आप अखण्डित ब्रह्मचर्य के सेवन से उत्तम ब्रह्मचर्य पूर्ण कर चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें" । वेद में शरीर को प्रियतनु दिव्यधानादि के नाम से याद किया गया है । दूसरा विषय इस पाद में निष्काम भाव से कार्य करने और वासनाओं से रहित होने का है । साधारण मनुष्य के कर्म अच्छे या बुरे होते हैं ।

या मिश्रित होते हैं। परन्तु योगी के कर्म अशुक्ला-कृष्ण होते हैं। क्योंकि वह वासना रहित कार्य करता है। जहां अच्छी बुरी वासनाएँ हैं वहीं अच्छे या बुरे की भावना विद्यमान है। वासनाएं सकाम भाव की द्योतक हैं और योगी के सब कर्म निष्काम रूप से होते हैं। उन वासनाओं का अभाव तभी हो सकता है, यदि उनके हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन का अभाव हो जावे।

"हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः"

अविद्या आदि क्लेश और अच्छे बुरे आदि कर्म वासनाओं के हेतु हैं। जाति आयु और भोग उनका फल है—चित्त उनका आश्रय है। शब्दादि विषय उन वासनाओं का आलम्बन है।

तीसरा विषय इस पाद में विज्ञानवाद का खण्डन है। बौद्ध मानते हैं कि "विज्ञान से अलग कोई वस्तु नहीं, उनकी युक्ति यह है, यदि

ज्ञान से भिन्न कोई वस्तु होती तो ज्ञान के बिना भी प्रतीत होती। ज्ञान बिना वस्तु के भी रहता है जैसे स्वप्न में पर वस्तु बिना ज्ञान के नहीं होती, इसलिए विज्ञान से पृथक् कोई वस्तु नहीं"। पतञ्जलि मुनि इसका खण्डन करते हैं, और निम्न युक्तियां देते हैं।

(१) "वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोः विभक्तः पन्थाः" चित्त और वस्तु का अलग २ रास्ता है, अर्थात् यह दोनों भिन्न हैं। एक ही वस्तु को देखकर कोई सुखी होते हैं, और कोई दुःखी। किसीको उसमें मोह हो जाता है, और किसी को उससे घृणा। यदि विज्ञान से भिन्न कोई वस्तु न होती, तब एक वस्तु अनेक चित्तों का विषय न होती"।

(२) "न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात्" "यदि यह माना जावे कि वस्तु ज्ञान के समकाल में होती है अन्य काल में नहीं

तो प्रश्न होगा कि वस्तु की उत्पत्ति क्या अपने अलग कारण के अधीन है, या चित्त के अधीन हैं ? यदि उसका कारण चित्त से भिन्न है तो उसको चित्त के समकाल में ही होना सिद्ध नहीं हो सकता। यदि यह माना जाए कि इसकी उत्पत्ति चित्त के अधीन है, तब प्रश्न यह है कि वह किस चित्त के अधीन है। क्योंकि यदि वह चित्त अन्य कार्य में लगा होगा तो उस समय उस वस्तु के होने में क्या प्रमाण होगा। वस्तु का अस्तित्व तो उस समय भी विद्यमान है"।

(३) वस्तु का अस्तित्व एक बात है, वस्तु का ज्ञान दूसरी बात है। यदि हमें किसी वस्तु का ज्ञान न हो तो उसका मतलब यह नहीं कि वह वस्तु अपना अस्तित्व भी नहीं रखती। ज्ञान वस्तु का तभी होगा, जब चित्त के साथ उसका सम्बन्ध होगा। यदि सम्बन्ध न हुआ तो उससे यह कैसे परिणाम निकाला गया कि वह वस्तु है ही नहीं।

(४) चौथा विषय इस पाद में यह है कि चित्त और आत्मा अलग २ हैं। वह एक वस्तु नहीं। प्रश्न यह है कि यदि चित्त अग्नि की तरह प्रकाश वाला है, तो उससे पृथक् आत्मा मानने की क्या आवश्यकता है। पतञ्जलि मुनि उत्तर देते हैं—

"न तत् स्वाभासं दृश्यत्वात्"

चित्त स्वप्रकाश नहीं क्योंकि वह दृश्य है। चित्त को जो प्रकाश मिला है वह उसका अपना नहीं है। उसको प्रकाश आत्मा से मिला है। जैसे चुम्बक के पास लोहा हो तो उसमें भी हरकत पैदा हो जाती है। ठीक इसी प्रकार आत्मा के पास चित्त का निवास होने से आत्मा के प्रकाश से यह प्रकाशित हो रहा है। अन्यथा चित्त जड़ है। वह दृश्य है, वह अपने आपको नहीं जान सकता, जैसे अग्नि जड़रूप होने से अपने प्रकाश को स्वयं आप नहीं जान सकती। इसी प्रकार चित्त

प्रकाश वाला भासता है। वह भी जड़ होने से अपने आप को नहीं जान सकता। इसलिए उसके जानने के लिए अलग प्रकाश की आवश्यकता है और वह प्रकाश आत्मा है।

पतञ्जलि मुनि कहते हैं केवलमात्र युक्तियों से चित्त और आत्मा का पृथकत्व नहीं सिद्ध किया जाता प्रत्युत योग द्वारा साधना करके भी साक्षात् किया जा सकता है।

"विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः"

जब योगी समाधि द्वारा चित्त और आत्मा के भेदका साक्षात्कार कर लेता है तब उसको उपरोक्त सचाई प्रकट हो जाती है।

जब आत्मा का स्पष्ट स्वरूप पता लग जाता है तब उस अवस्था का नाम ही कैवल्य है।

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥

कैवल्यपादः

"जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाःसिद्धयः"
॥१॥

सिद्धियां कई प्रकार की हैं—

कई सिद्धियां जन्मजा हैं, जो पूर्वजन्म के संस्कारों का फल हैं। जैसे कपिल मुनि को जन्म से सांसिद्धिक ज्ञान था। कई सिद्धियां ओषधि द्वारा तथा रसायनादि द्वारा प्राप्त होती हैं। कई सिद्धियां मन्त्रों के जप से, अथवा स्वाध्याय से प्राप्त होती हैं।

"स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः"

कई सिद्धियां तप द्वारा प्राप्त होती हैं। तप से अशुद्धि का क्षय होता है उसके क्षय से शरीर और इन्द्रियां सबल होती हैं।

"कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसः"

कई सिद्धियां समाधि द्वारा प्राप्त होती हैं। यह अन्तिम सिद्धियां ही योग की सिद्धियां हैं। जिनका वर्णन तीसरे पाद में किया है।

सिद्धियों के द्वारा योगी के शरीर में अपूर्व परिवर्तनः—

"जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्" ॥२॥

शरीर और इन्द्रियों का बदल जाना प्रकृतियों के (शरीर में) भरने से होता है। अर्थात् उपरोक्त सिद्धियों के प्राप्त हो जाने से योगी के शरीर में अपूर्व परिवर्तन होता है। उसका शरीर नीरोग लावण्ययुक्त, रूपवान् तथा दीर्घायु भोगने के योग्य हो जाता है।

"निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्" ॥३॥

उपरोक्त सिद्धियां शरीरों के विकास में कारण

नहीं हैं। प्रत्युत उनके रास्ते में जो रुकावटें हैं, उन्हें वह दूर करती हैं। जिस प्रकार किसान एक खेत से दूसरे खेत को पानी लगाना चाहता है, तब वह पहले मुहाने का मुंह बन्द कर दूसरे मुहाने का मुंह खोल देता है।

"निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात्" ॥४॥

अस्मिता से निर्माण चित्तों की उत्पत्ति होती है। अर्थात् जैसी २ सिद्धियां होंगी उसके अनुसार संस्कार, वासनाएँ तथा स्मृति होगी।

"प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमने-केषाम्" ॥५॥

परन्तु यद्यपि निर्माण चित्तों की क्रियाएं भिन्न भिन्न हैं, तथापि एक चित्त (जो सूक्ष्म शरीर का अङ्ग है) इन सब निर्माण चित्तों का (सिद्धियों से उपलब्ध, वासनाओं, संस्कारों तथा स्मृतियों का) अधिष्ठाता है।

"तत्र ध्यानजमनाशयम्" ॥६॥

जो चित्त समाधि द्वारा निर्मित हुआ है, वह वासनाओं से रहित है और जो चित्त ओषधि, मंत्र तथा तप द्वारा निर्मित हुये हैं, उनमें वासनाओं का बीज रह जाता है।

निष्काम तथा वासना से रहित अवस्था का वर्णनः—

"कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविध-मितरेषाम्" ॥७॥

योगियों के कर्म न बुरे हैं न अच्छे हैं। शेष पुरुषों के कर्म तीन प्रकार के होते हैं।

शुक्ल कर्म=अच्छे कर्म।

कृष्ण कर्म=बुरे कर्म।

शुक्ल कृष्ण कर्म=अच्छे और बुरे मिले हुए कर्म।

"ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्ति-
र्वासनानाम्" ॥८॥

इन तीन प्रकार के कर्मों से उन्ही वासनाओं का प्रादुर्भाव होता है जो परिस्थिति के अनुकूल होती हैं। शेष वासनाएं दबी रहती हैं।

"जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं
स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात्" ॥९॥

जाति देश तथा काल का व्यवधान होने पर भी वासनाओं का एक निश्चित क्रम है, स्मृति और संस्कार के एक क्रम होने के कारण।

"तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात्"
॥१०॥

वासनाएँ प्रवाह से अनादि काल से हैं, क्योंकि सुख की इच्छा नित्य है।

"हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषा-
मभावे तदभावः" ॥११॥

वासनाओं का अभाव उस समय होगा जब उन वासनाओं के कारण, फल, आश्रय और आलम्बन का अभाव हो जावे। अविद्यादि क्लेश उन वासनाओं के कारण हैं। जाति, आयु, भोग उनका फल है, चित्त आश्रय है, विषय उनके आलम्बन हैं।

"अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्व-
भेदाद्धर्माणाम्" ॥१२॥

वासनाएँ भूत और भविष्यत् स्वरूप से विद्यमान हैं, क्योंकि धर्मों का काल से भेद होता है। वासनाएँ सर्वथा नाश नहीं होतीं, प्रत्युत वर्तमान अवस्था को छोड़कर भूत या भविष्यावस्था में चली जाती हैं।

"ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः" ॥१३॥

वह धर्म प्रकट और सूक्ष्म सब गुण स्वरूप हैं। अर्थात् प्रत्येक गुप्त अथवा प्रकट कार्य तीन गुणों के सन्निवेश से पैदा होता है। तीन गुण सत, रज और तम हैं।

विज्ञानवाद का खण्डन

"परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्वम्" ॥१४॥

वस्तुतत्व की एकता परिणाम के एक होने के कारण से है। गुण तीन हैं, परन्तु वह सब मिल कर एक परिणाम को पैदा करते हैं। वह परिणाम ही वस्तुत: वस्तुतत्व की एकता का द्योतक है।

"वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः" ॥१५॥

बौद्धों का मत है, कि वस्तु कोई वास्तविक सत्ता नहीं रखती वह केवल मनुष्य के विज्ञान का

नाम है। Berkley भी यही मानता है। परन्तु पतञ्जलि ऋषि इस सूत्र द्वारा इसका खण्डन करते हैं और बतलाते हैं कि ज्ञान और वस्तु भिन्न २ हैं और उनका रास्ता भी अलग २ है। वस्तु की स्थिति बिना ज्ञान के भी ज्यों की त्यों विद्यमान है।

"न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात्" ॥१६॥

वस्तु ज्ञान से स्वतन्त्र है, वह किसी एक चित्त पर आश्रित नहीं है। जब वह चित्त समाहित हो रहा है, तब क्या वस्तु की सत्ता नष्ट हो जावेगी? नहीं। चित्त के समाहित होने पर भी वह वस्तु ज्यों की त्यों विद्यमान रहती है।

"तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम्" ॥१७॥

अब प्रश्न यह है कि इसका क्या कारण है कि कभी वस्तु का ज्ञान होता है, और कभी नहीं

होता। इस सूत्र में इस प्रश्न का उत्तर है। जब चित्त का वस्तु के साथ उपराग होता है तब वस्तु का ज्ञान होता है। जब उपराग नहीं होता, तब उसका ज्ञान नहीं होता। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उस वस्तु का अस्तित्व नहीं रहा।

"सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुष-स्यापरिणामित्वात्" ॥१८॥

परन्तु चित्त की वृत्तियां तो सदा ज्ञात रहती हैं, क्योंकि आत्मा में कोई तब्दीली नहीं होती। वस्तुएँ तो कभी ज्ञात होती हैं और कभी अज्ञात रहती हैं। क्योंकि चित्त तब्दील होता रहता है। परन्तु चित्त की वृत्तियां सदा ज्ञात रहती हैं। क्योंकि वह आत्मा के सम्मुख होती हैं जो अपरिणामी है।

—चित्त और आत्मा एक नहीं—

"न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात्" ॥१९॥

चित्त को ही आत्मा मान लिया जावे तो क्या

हानि है ? (इसका उत्तर) चित्त स्वप्रकाश नहीं वह दृश्य है ।

"एकसमये चोभयानवधारणम्" ॥२०॥

यदि चित्त को स्वप्रकाश मान लिया जावे, तब वह एक ही समय में अपने आप को तथा अपने विषय को प्रकाशित करेगा, ऐसा नहीं हो सकता ।

"चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसंकरश्च" ॥२१॥

यदि पहले चित्त को दूसरे चित्त का दृश्य माना जावे तो यह क्रम कभी समाप्त नहीं होगा, और स्मृतियों का संकर हो जावेगा ।

"चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम्" ॥२२॥

आत्मा में कोई तब्दीली नहीं होती है । परन्तु चित्त के अत्यन्त समीप होने के कारण वह अपने आपको चित्तवत् समझने लगता है ।

"द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम्" ॥२३॥

चित्त द्रष्टा तथा दृश्य के रङ्ग से रङ्गा हुआ सब कुछ जानने के योग्य प्रतीत होता है।

"तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात्" ॥२४॥

असंख्य वासनाओंसे चित्रित हुआ २ भी चित्त दूसरे के लिए है। संहत्यकारी होने के कारण।

"विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः" ॥२५॥

चित्त और आत्मा में योग द्वारा भेद देखने वाले के लिए चित्त में आत्मभावना निवृत्त होजाती है।

"तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम्" ॥२६॥

तब चित्त विवेक की ओर ढला हुआ कैवल्य की ओर आकर्षित होता है।

"तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः" ॥२७॥

जबतक विवेकज्ञान प्राप्त नहीं होता, तभतक ही व्युत्थान की वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। जब विवेकज्ञान हो गया तब वह वृत्तियां नहीं उठतीं।

"हानमेषां क्लेशवदुक्तम्" ॥२८॥

इनके निवृत्त करने का उपाय वही है, जो क्लेशों के निवृत्त करने का है।

"प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेक-ख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः" ॥२९॥

विवेकज्ञान के प्राप्त होने पर भी जो विरक्त है, अर्थात् इस विवेक ख्याति के फल की भी जिसको आकांक्षा नहीं है, उसे धर्ममेघ समाधि होती है।

"ततःक्लेशकर्मनिवृत्तिः" ॥३०॥

उस धर्ममेघ समाधि से कर्मों की और क्लेशों की निवृत्ति हो जाती है।

"तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम्" ॥३१॥

तब ज्ञान का प्रकाश आवरण और मलों से रहित हुआ बेहद हो जाता है और जानने योग्य वस्तु अल्प हो जाती है।

"ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम्" ॥३२॥

तब कृतार्थ हुये गुणों का रद्दोबदल बन्द हो जाता है।

"क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः" ॥३३॥

क्षण २ में जो तब्दीली गुणों में होती है, और

परिणाम की समाप्ति में जिसका ज्ञान होता है उसे क्रम कहते हैं।

"पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चिति-शक्तिरिति" ॥३४॥

गुणों का जो पुरुषार्थ से शून्य हो चुके हैं अपने कारण में लीन होना ही कैवल्य है। अथवा आत्मा का अपने स्वरूप में अवलम्बित होना ही कैवल्य है।

॥ इति ॥

शुद्धाशुद्ध पत्र

भूमिका

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
३	एम०ए०सी०	एम०एस०सी०
७	Mccorason	Mccorrison
६	आत्मा को	आत्मा की
१०	मन्त्रों	यन्त्रों
११	स्वभाव के	स्वभाव से
११	प्रकृतिक	प्राकृतिक
१७	So follow	to follow
१८	तराकों	तरीकों
२३	Protien	Protein
,,	Lactri	Lactic
२४	awenty	twenty
,,	then	them
२७	Laymam	Layman

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
३३	Cerculary	Circulatory
३६	weihgt	weight
,,	Protien	Protein
४०	शनीनाम्	शशीनाम्

मूल पुस्तक

४	अन्तगत	अन्तर्गत
,,	वस्तु से शून्य	(यह शब्द नहीं होने चाहियें)
११	लगान	लगाना
४७	erroniously	erroneously
१०२	क्रम या भेद	क्रम का भेद
१२६	दिव्यघानादि	दिव्यधामादि
१२८	तयोः विभक्तः	तयोर्विभक्तः